आत्मयोग

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री

आसारामजी महाराज के सत्संग-प्रवचन

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के
सत्संग-प्रवचन

आत्मयोग

पूज्य बापू का पावन संदेश

हम धनवान होगे या नहीं, चुनाव जीतेंगे या नहीं इसमें शंका हो सकती है परंतु भैया ! हम मरेंगे या नहीं, इसमें कोई शंका है? विमान उड़ने का समय निश्चित होता है, बस चलने का समय निश्चित होता है, गाड़ी छूटने का समय निश्चित होता है परंतु इस जीवन की गाड़ी छूटने का कोई निश्चित समय है?

आज तक आपने जगत में जो कुछ जाना है, जो कुछ प्राप्त किया है.... आज के बाद जो जानोगे और प्राप्त करोगे, प्यारे भैया ! वह सब मृत्यु के एक ही झटके में छूट जायेगा, जाना अनजाना हो जायेगा, प्राप्ति अप्राप्ति में बदल जायेगी।

अतः सावधान हो जाओ। अन्तर्मुख होकर अपने अविचल आत्मा को, निजस्वरूप के अगाध आनन्द को, शाश्वत शांति को प्राप्त कर लो। फिर तो आप ही अविनाशी आत्मा हो।

जागो.... उठो.... अपने भीतर सोये हुए निश्चयबल को जगाओ। सर्वदेश, सर्वकाल में सर्वोत्तम आत्मबल को अर्जित करो। आत्मा में अथाह सामर्थ्य है। अपने को दीन-हीन मान बैठे तो विश्व में ऐसी कोई सत्ता नहीं जो तुम्हें ऊपर उठा सके। अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो गये तो त्रिलोकी में ऐसी कोई हस्ती नहीं जो तुम्हें दबा सके।

सदा स्मरण रहे कि इधर-उधर भटकती वृत्तियों के साथ तुम्हारी शक्ति भी बिखरती रहती है। अतः वृत्तियों को बहकाओ नहीं। तमाम वृत्तियों को एकत्रित करके साधना-काल में आत्मचिन्तन में लगाओ और व्यवहार-काल में जो कार्य करते हो उसमें लगाओ। दत्तचित्त होकर हर कोई कार्य करो। सदा शान्त वृत्ति धारण करने का अभ्यास करो। विचारवन्त एवं प्रसन्न रहो। जीवमात्र को अपना स्वरूप समझो। सबसे स्नेह रखो। दिल को व्यापक रखो। आत्मनिष्ठ में जगे हुए महापुरुषों के सत्संग एवं सत्साहित्य से जीवन को भक्ति एवं वेदान्त से पुष्ट एवं पुलकित करो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रास्ताविक

इस नन्हीं सी पुस्तक में भक्ति, योग और ज्ञानमार्ग के पवित्र आत्माओं के लिए सहज में अन्तस्तल से स्फुरित महापुरूषों की वाणी निहित है जिसमें गीता, भागवत, रामायण आदि के प्रमाण सहित उन सत्पुरूषों के अनुभव छलकते हैं।

जितना गूढ़ विषय है उतना ही सरल भी है। चाहे भक्त हो चाहे योगी हो चाहे ज्ञानमार्गी हो, चाहे किसी भी धर्म, मत, पंथ, विचारों को माननेवाला हो, सबको इस ओजपूर्ण, अनुभव-संपन्न, 'आत्मयोग' कराने वाली दिव्य वाणी से लाभ होगा और उन पवित्र आत्माओं के द्वारा ये अनुभव-संपन्न वचन औरों तक भी पहुँचेंगे।

सत्पुरूषों के वचन को लिपिबद्ध करने में अगर कोई त्रुटि रह गई हो तो वाचक कृपा करके हमें सूचित करें, हम आभारी होंगे।

विनीत,
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
अमदावाद आश्रम

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ब्रह्मचर्य-रक्षा का मंत्र

ॐ नमो भगवते महाबले पराक्रमाय
मनोभिलाषितं मनः स्तंभ कुरू कुरू स्वाहा।

रोज दूध में निहार कर 21 बार इस मंत्र का जप करें और दूध पी लें। इससे ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है। स्वभाव में आत्मसात् कर लेने जैसा नियम है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्मयोग

भगवान के प्यारे भक्त दृढ़ निश्चयी हुआ करते हैं। वे बार-बार प्रभु से प्रार्थना किया करते हैं और अपने निश्चय को दुहराकर संसार की वासनाओं को, कल्पनाओं को शिथिल किया करते हैं। परमात्मा के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए वे कहते हैं-

'हम जन्म-मृत्यु के धक्के-मुक्के अब न खायेंगे। अब आत्माराम में आराम पायेंगे। मेरा कोई पुत्र नहीं, मेरी कोई पत्नी नहीं, मेरा कोई पति नही, मेरा कोई भाई नहीं। मेरा मन नहीं, मेरी बुद्धि नहीं, चित्त नहीं, अहंकार नहीं। मैं पंचभौतिक शरीर नहीं।

चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

मोह, ममता के सम्बन्धों में मैं कई बार जन्मा हूँ और मरा हूँ। अब दूर फेंक रहा हूँ ममता को। मोह को अब ज्ञान की कैंची से काट रहा हूँ। लोभ को ॐ की गदा से मारकर भगा रहा हूँ।

मेरा रोम-रोम संतों की, गुरू की कृपा और करूणा से पवित्र हो रहा है। **आनन्दोऽहम्..... शान्तोऽहम्..... शुद्धोऽहम्..... निर्विकल्पोऽहम्.... निराकारोऽहम्।** मेरा चित्त प्रसन्न हो रहा है।

'हम राम के थे, राम के हैं और राम के ही रहेंगे। ॐ राम..... ॐ राम.... ॐ राम....।'

कोई भी चिन्ता किये बिना जो प्रभु में मस्त रहता है वह सहनशील है, वह साधुबुद्धि है।

'आज' ईश्वर है। 'कल' संसार है। ईश्वर कल नहीं हो सकता। ईश्वर सदा है। संसार पहले नहीं था। संसार पाया जाता है, ईश्वर पाया नहीं जाता। केवल स्मृति आ जाय ईश्वरत्व की तो वह मौजूद है। **स्मृति मात्रेण.....।** ईश्वर, परमात्मा हमारे से कभी दूर गये ही नहीं। उनकी केवल विस्मृति हो गई। आने वाले कल की चिन्ता छोड़ते हुए अपने शुद्ध आत्मा के भाव में जिस क्षण आ जाओ उसी क्षण ईश्वरीय आनन्द या आत्म-खजाना मौजूद है।

भगवान को पदार्थ अर्पण करना, सुवर्ण के बर्तनों में भगवान को भोग लगाना, अच्छे वस्त्रालंकार से भगवान की सेवा करना यह सब के बस की बात नहीं है। लेकिन अन्तर्यामी भगवान को प्यार करना सब के बस की बात है। धनवान शायद धन से भगवान की थोड़ी-बहुत सेवा कर सकता है लेकिन निर्धन भी भगवान को प्रेम से प्रसन्न कर सकता है। धनवानों का धन शायद भगवान तक न भी पहुँचे लेकिन प्रेमियों का प्रेम तो परमात्मा तक तुरन्त पहुँच जाता है।

अपने हृदय-मंदिर में बैठे हुए अन्तरात्मारूपी परमात्मा को प्यार करते जाओ। इसी समय परमात्मा तुम्हारे प्रेमप्रसाद को ग्रहण करते जायेंगे और तुम्हारा रोम-रोम पवित्र होता जायगा। कल की चिन्ता छोड़ दो। बीती हुई कल्पनाओं को, बीती हुई घटनाओं को स्वप्न समझो। आने वाली घटना भी स्वप्न है। वर्त्तमान भी स्वप्न है। एक अन्तर्यामी अपना है। उसी को प्रेम करते जाओ और अहंकार को डुबाते जाओ उस परमात्मा की शान्ति में।

ॐॐॐॐॐॐॐ

हम शांत सुखस्वरूप आत्मा हैं। तूफान से सरोवर में लहरें उठ रही थीं। तूफान शान्त हो गया। सरोवर निस्तरंग हो गया। अब जल अपने स्वभाव में शान्त स्थित है। इसी प्रकार अहंकार और इच्छाओं का तूफान शान्त हो गया। मेरा चित्तरूपी सरोवर अहंकार और इच्छाओं से रहित शान्त हो गया। अब हम बिल्कुल निःस्पंद अपनी महिमा में मस्त हैं।

मन की मनसा मिट गई भरम गया सब दूर।
गगन मण्डल में घर किया काल रहा सिर कूट।।

इच्छा मात्र, चाहे वह राजसिक हो या सात्त्विक हो, हमको अपने स्वरूप से दूर ले जाती है। ज्ञानवान इच्छारहित पद में स्थित होते हैं। चिन्ताओं और कामनाओं के शान्त होने पर ही स्वतंत्र वायुमण्डल का जन्म होता है।

हम वासी उस देश के जहाँ पार ब्रह्म का खेल।
दीया जले अगम का बिन बाती बिन तेल।।

आनन्द का सागर मेरे पास था मुझे पता न था। अनन्त प्रेम का दरिया मेरे भीतर लहरा रहा था और मैं भटक रहा था संसार के तुच्छ सुखों में।

ऐ दुनियाँदारों ! ऐ बोतल की शराब के प्यारों ! बोतल की शराब तुम्हें मुबारक है। हमने तो अब फकीरों की प्यालियाँ पी ली हैं..... हमने अब रामनाम की शराब पी ली है।

दूर हटो दुनियाँ की झंझटों ! दूर हटो रिश्तेनातों की जालों ! हमने राम से रिश्ता अपना बना लिया है।

हम उसी परम प्यारे को प्यार किये जा रहे हैं जो वास्तव में हमारा है।

'आत्मज्ञान में प्रीति, निरन्तर आत्मविचार और सत्पुरूषों का सान्निध्य' - यही आत्म-साक्षात्कार की कुँजियाँ हैं।

हम निःसंकल्प आत्म-प्रसाद में प्रवेश कर रहे हैं। जिस प्रसाद में योगेश्वरों का चित्त प्रसाद पाता है, जिस प्रसाद में मुनियों का चित्त मननशील होता है उस प्रसाद में हम आराम पाये जा रहे हैं।

तुम्हें मृत्युदण्ड की सजा मिलने की तैयारी हो, न्यायाधीश सजा देने के लिए कलम उठा रहा हो, उस एक क्षण के लिए भी यदि तुम अपने आत्मा में स्थित हो जाओ तो न्यायाधीश से वही लिखा जायेगा जो परमात्मा के साथ तुम्हारी नूतन स्थिति के अनुकूल होगा, तुम्हारे कल्याण के अनुकूल होगा।

दुःख का पहाड़ गिरता हो और तुम परमात्मा में डट जाओ तो वह पहाड़ रास्ता बदले बिना नहीं रह सकता। दुःख का पहाड़ प्रकृति की चीज है। तुम परमात्मा में स्थित हो तो प्रकृति परमात्मा के खिलाफ कभी कदम नहीं उठाती। ध्यान में जब परमात्म-स्वरूप में गोता मारो तो भय, चिन्ता, शोक, मुसीबत ये सब काफूर हो जाते हैं। जैसे टॉर्च का प्रकाश पड़ते ही ठूँठे में दिखता हुआ चोर भाग जाता है वैसे ही आत्मविचार करने से, आत्म-भाव में आने मात्र से भय, शोक, चिन्ता, मुसीबत, पापरूपी चोर पलायन हो जाते हैं। आत्म-ध्यान में गोता लगाने से कई जन्मों के कर्म कटने लगते हैं। अभी तो लगेगा कि थोड़ी शान्ति मिली, मन पवित्र हुआ लेकिन कितना अमाप लाभ हुआ, कितना कल्याण हुआ इसकी तुम कल्पना तक नहीं कर सकते। आत्म ध्यान की युक्ति आ गयी तो कभी भी विकट परिस्थितियों के समय ध्यान में गोता मार सकते हो।

मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध और जालंधर बन्ध, यह तीन बन्ध करके प्राणायाम करें, ध्यान करें तो थोड़े ही दिनों में अदभुत चमत्कारिक लाभ हो जायगा। जीवन में बल आ जायगा। डरपोक होना, भयभीत होना, छोटी-छोटी बातों में रो पड़ना, जरा-जरा बातों में चिन्तातुर हो जाना यह सब मन की दुर्बलताएँ हैं, जीवन के दोष हैं। इन दोषों की निकालने के लिए ॐ का जप करना चाहिए। प्राणायाम करना चाहिए। सत्पुरूषों का संग करना चाहिए।

जो तुम्हें शरीर से, मन से, बुद्धि से दुर्बल बनाये वह पाप है। पुण्य हमेशा बलप्रद होता है। सत्य हमेशा बलप्रद होता है। तन से, मन से, बुद्धि से और धन से जो तुम्हें खोखला करे वह राक्षस है। जो तुम्हें तन-मन-बुद्धि से महान् बनायें वे संत हैं।

जो आदमी डरता है उसे डराने वाले मिलते हैं।

त्रिबन्ध के साथ प्राणायाम करने से चित्त के दोष दूर होने लगते हैं, पाप पलायन होने लगते हैं, हृदय में शान्ति और आनन्द आने लगता है, बुद्धि में निर्मलता आने लगती है। विघ्न, बाधाएँ, मुसीबतें किनारा करने लगती हैं।

तुम ईश्वर में डट जाओ। तुम्हारा दुश्मन वही करेगा जो तुम्हारे हित में होगा। ॐ का जप करने से और सच्चे आत्मवेत्ता संतों की शरण में जाने से कुदरत ऐसा रंग बदल देती है कि भविष्य ऊँचा उठ जाता है।

अचल संकल्प-शक्ति, दृढ़ निश्चय और निर्भयता होनी चाहिए। इससे बाधाएँ ऐसी भागती हैं जैसे आँधी से बादल। आँधी चली तो बादल क्या टिकेंगे ?

मुँह पर बैठी मक्खी जरा-से हाथ के इशारे से उड़ जाती है ऐसे ही चिन्ता, क्लेश, दुःख हृदय में आयें तब जरा सा ध्यान का इशारा करो तो वे भाग जायेंगे। यह तो अनुभव की बात है। डरपोक होने से तो मर जाना अच्छा है। डरपोक होकर जिये तो क्या जिये ? मूर्ख होकर जिये तो क्या जिये ? भोगी होकर जिये तो क्या खाक जिये ? योगी होकर जियो। ब्रह्मवेत्ता होकर जियो। ईश्वर के साथ खेलते हुए जियो।

कंजूस होकर जिये तो क्या जिये ? शिशुपाल होकर जिये तो क्या जिये ? शिशुपाल यानी जो शिशुओं को, अपने बच्चों को पालने-पोसने में ही अपना जीवन पूरा कर दे। भले चार दिन की जिन्दगी हो, चार पल की जिन्दगी हो लेकिन हो आत्मभाव की। चार सौ साल जिया लेकिन अज्ञानी होकर जिया तो क्या खाक जिया ? मजदूरी की और मरा। जिन्दगी जीना तो आत्मज्ञान की।

भूतकाल जो गुजर गया उसके लिये उदास मत हो। भविष्य की चिन्ता मत करो। जो बीत गया उसे भुला दो। जो आता है उसे हँसते हुए गुजारो। जो आयेगा उसके लिए विमोहित न हो। आज के दिन मजे में रहो। आज का दिन ईश्वर के लिए। आज खुश रहो। आज निर्भय रहो। यह पक्का कर दो। 'आज रोकड़ा.... काले उधार।' इसी प्रकार आज निर्भय....। आज नहीं डरते। कल तो आयेगी नहीं। जब कल नहीं आयेगी तो परसों कहाँ से आयेगी ? जब आयेगी तो आज होकर ही आयेगी।

आदमी पहले भीतर से गिरता है फिर बाहर से गिरता है। भीतर से उठता है तब बाहर से उठता है। बाहर कुछ भी हो जाय लेकिन भीतर से नहीं गिरो तो बाहर की परिस्थितियाँ तुम्हारे अनुकूल हो जायेंगी।

विघ्न, बाधाएँ, दुःख, संघर्ष, विरोध आते हैं वे तुम्हारी भीतर की शक्ति जगाने कि लिए आते है। जिस पेड़ ने आँधी-तूफान नहीं सहे उस पेड़ की जड़ें जमीन के भीतर मजबूत नहीं होंगी। जिस पेड़ ने जितने अधिक आँधी तूफान सहे और खड़ा रहा है उतनी ही उसकी नींव मजबूत है। ऐसे ही दुःख, अपमान, विरोध आयें तो ईश्वर का सहारा लेकर अपने ज्ञान की नींव मजबूत करते जाना चाहिए। दुःख, विघ्न, बाधाएँ इसलिए आती हैं कि तुम्हारे ज्ञान की जड़ें गहरी जायें। लेकिन हम लोग डर जाते है। ज्ञान के मूल को उखाड़ देते हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जागो अपनी महिमा में

स्वामी रामतीर्थ के बोलने का स्वभाव था किः "मैं बादशाह हूँ, मैं शाहों का शाह हूँ।" अमेरिका के लोगों ने पूछाः "आपके पास है तो कुछ नहीं, सिर्फ दो जोड़ी गेरूए कपड़े हैं। राज्य नहीं, सत्ता नहीं, कुछ नहीं, फिर आप शाहों के शाह कैसे ?"

रामतीर्थ ने कहाः "मेरे पास कुछ नहीं इसलिए तो मैं बादशाह हूँ। तुम मेरी आँखों में निहारो.... मेरे दिल में निहारो। मैं ही सच्चा बादशाह हूँ। बिना ताज का बादशाह हूँ। बिना वस्तुओं का बादशाह हूँ। मुझ जैसा बादशाह कहाँ ? जो चीजों का, विषयों का गुलाम है उसे तुम बादशाह कहते हो पागलों ! **जो अपने आप में आनन्दित है वही तो बादशाह है।** विश्व का सम्राट तुम्हारे पास से गुजर रहा है। ऐ दुनियाँदारों ! वस्तुओं का बादशाह होना तो अहंकार की निशानी है लेकिन अपने मन का बादशाह होना अपने प्रियतम की खबर पाना है। मेरी आँखों में तो निहारो ! मेरे दिल में तो गोता मार के जरा देखो ! मेरे जैसा बादशाह और कहाँ मिलेगा ? मैं अपना राज्य, अपना वैभव बिना शर्त के दिये जा रहा हूँ.... लुटाये जा रहा हूँ।"

जो स्वार्थ के लिए कुछ दे वह तो कंगाल है लेकिन जो अपना प्यारा समझकर लुटाता रहे वही तो सच्चा बादशाह है।

'मुझ बादशाह को अपने आपसे दूरी कहाँ ?'

किसी ने पूछाः "तुम बादशाह हो ?"

"हाँ...."

"तुम आत्मा हो ?"

"हाँ।"

"तुम God हो?"

"हाँ....। इन चाँद सितारों में मेरी ही चमक है। हवाओं में मेरी ही अठखेलियाँ हैं। फूलों में मेरी ही सुगन्ध और चेतना है।"

"ये तुमने बनाये ?"

"हाँ.... जबसे बनाये हैं तब से उसी नियम से चले आ रहे हैं। यह अपना शरीर भी मैंने ही बनाया है, मैं वह बादशाह हूँ।"

जो अपने को आत्मा मानता है, अपने को बादशाहों की जगह पर नियुक्त करता है वह अपने बादशाही स्वभाव को पा लेता है। जो राग-द्वेष के चिन्तन में फँसता है वह ऐसे ही कल्पनाओं के नीचे पीसा जाता है।

मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ। आत्मा ही तो बादशाह है.... बादशाहों का बादशाह है। सब बादशाहों को नचानेवाला जो बादशाहों का बादशाह है वह आत्मा हूँ मैं।

अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो

विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्न बन्धः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।।

मुक्ति और बन्धन तन और मन को होते है। मैं तो सदा मुक्त आत्मा हूँ। अब मुझे कुछ पता चल रहा है अपने घर का। मैं अपने गाँव जाने वाली गाड़ी में बैठा तब मुझे अपने घर की शीतलता आ रही है। योगियों की गाड़ी में बैठा तो लगता है कि अब घर बहुत नजदीक है। भोगियों की गाड़ियों में सदियों तक घूमता रहा तो घर दूर होता जा रहा था। अपने घर में कैसे आया जाता है, मस्ती कैसे लूटी जाती है यह मैंने अब जान लिया।

मस्तों के साथ मिलकर मस्ताना हो रहा हूँ।
शाहों के साथ मिलकर शाहाना हो रहा हूँ।।

कोई काम का दीवाना, कोई दाम का दीवाना, कोई चाम का दीवाना, कोई नाम का दीवाना, लेकिन कोई कोई होता है जो राम का दीवाना होता है।

दाम दीवाना दाम न पायो। हर जन्म में दाम को छोड़कर मरता रहा। चाम दीवाना चाम न पायो, नाम दीवाना नाम न पायो लेकिन राम दीवाना राम समायो। मैं वही दीवाना हूँ।

ऐसा महसूस करो कि मैं राम का दीवाना हूँ। लोभी धन का दीवाना है, मोही परिवार का दीवाना है, अहंकारी पद का दीवाना है, विषयी विषय का दीवाना है। साधक तो राम दीवाना ही हुआ करता है। उसका चिन्तन होता है किः

चातक मीन पतंग जब पिया बन नहीं रह पाय।
साध्य को पाये बिना साधक क्यों रह जाय ?

हम अपने साध्य तक पहुँचने के लिए जेट विमान की यात्रा किये जा रहे हैं। जिन्हें पसन्द हो, इस जेट का उपयोग करें, नहीं तो लोकल ट्रेन में लटकते रहें, मौज उन्हीं की है।

यह सिद्धयोग, यह कुण्डलिनी योग, यह आत्मयोग, जेट विमान की यात्रा है, विहंग मार्ग है। बैलगाड़ीवाला चाहे पच्चीस साल से चलता हो लेकिन जेटवाला दो ही घण्टों में दरियापार की खबरें सुना देगा। हम दरियापार माने संसारपार की खबरों में पहुँच रहे हैं।

ऐ मन रूपी घोड़े ! तू और छलांग मार। ऐ नील गगन के घोड़े ! तू और उड़ान ले। आत्म-गगन के विशाल मैदान में विहार कर। खुले विचारों में मस्ती लूट। देह के पिंजरे में कब तक छटपटाता रहेगा ? कब तक विचारों की जाल में तड़पता रहेगा ? ओ आत्मपंछी ! तू और छलांग मार। और खुले आकाश में खोल अपने पंख। निकल अण्डे से बाहर। कब तक कोचले में पड़ा रहेगा ? फोड़ इस अण्डे को। तोड़ इस देहाध्यास को। हटा इस कल्पना को। नहीं हटती तो ॐ की गदा से चकनाचूर कर दे।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भवसागर का किनाराः वैराग्य

आत्मा परमात्मा विषयक ज्ञान प्राप्त करके नित्य आत्मा की भावना करें। अपने शाश्वत स्वरूप की भावना करें। अपने अन्तर्यामी परमात्मा में आनन्द पायें। अपने उस अखण्ड एकरस में, उस आनन्दकन्द प्रभु में, उस अद्वैत-सत्ता में अपनी चित्तवृत्ति को स्थापित करें। रूप, अवलोक, मनस्कार तथा दृश्य, दृष्टा, दर्शन ये चित्त के फुरने से होते हैं। विश्व, तैजस, प्राज्ञ, जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये सब जिससे प्रकाशित होते हैं उस सबसे परे और सबका अधिष्ठान जो परमात्मा है उस परमात्मा में जब प्रीति होती है, तब जीव निर्वासनिक पद को प्राप्त होता है। निर्वासनिक होते ही वह ईश्वरत्व में प्रतिष्ठित होता है। फिर बाहर जो भी चेष्टा करे लेकिन भीतर से शिला की नाईं सदा शान्त है। वशिष्ठजी कहते हैं- "हे राम जी ! ऐसे ज्ञानवान पुरूष जिस पद में प्रतिष्ठित होते हैं उसी में तुम भी प्रतिष्ठित हो जाओ।"

जिसका चित्त थोड़ी-थोड़ी बातों में उद्विग्न हो जाता है, घृणा, राग, द्वेष, हिंसा या तिरस्कार से भर जाता है वह अज्ञानी है। ज्ञानी का हृदय शान्त, शीतल, अद्वैत आत्मा में प्रतिष्ठित होता है। हम लोगों ने वह प्रसंग सुना है किः

मंकी ऋषि ने खूब तप किया, तीर्थयात्रा की। उनके कषाय परिपक्व हुए अर्थात् अन्तःकरण शुद्ध हुआ। पाप जल गये। वे जा रहे थे और वशिष्ठजी के दर्शन हुए। उनके मन में था कि सामने धीवरों के पाँच-सात घर हैं। वहाँ जाकर जलपान करूँगा, वृक्ष के नीचे आराम पाऊँगा।

वशिष्ठजी ने कहाः "हे मार्ग के मीत ! अज्ञानी जो आप जलते हैं, राग-द्वेष में, हेय-उपादेय में जलते हैं उनके पास जाकर तुमको क्या शान्ति मिलेगी ? " जैसे किसी को आग लगे और पेट्रोल पंप के फुव्वारे के नीचे जाकर आग बुझाना चाहे तो वह मूर्ख है। ऐसे ही जो आपस में राग-द्वेष से जलते हैं, जो संसार की आसक्तियों से बँधे हैं, उनके संपर्क में और उनकी बातों में आकर हे जिज्ञासु ! तेरी तपन नहीं मिटेगी। तेरी तपन और राग-द्वेष और बढ़ेंगे।

हे मंकी ऋषि ! तुम ज्ञानवानों का संग करो। मैं तुम्हारे हृदय की तपन मिटा दूँगा और अकृत्रिम शान्ति दूँगा। संसार के भोगों से, संसार के सम्बन्धों से जो शान्ति मिलती है वह कृत्रिम शान्ति है। जब जीव अन्तर्मुख होता है, जब परमात्माभिमुख होता है, चित्त शान्त होता है तब जो शान्ति मिलती है वह आत्मिक शान्ति है।"

वासनावाले को अशान्ति है। वासना के अनुरूप वस्तु उसे मिलती है तो थोड़ी देर के लिए शान्ति होती है। लोभी को रूपयों से लगाव है। रूपये मिल गये तो खुशी हो गयी। भोगी को भोग मिले तो खुशी हो गयी। साधक ऐसी कृत्रिम शान्ति पाकर अपने को भाग्यवान नहीं मानता। साधक तो बाहर की चीजें मिले या न मिले फिर भी भीतर का परमात्म-पद पाकर अपना जीवन धन्य करता है। वह अकृत्रिम शान्ति प्राप्त करता है।

संसार का तट वैराग्य है। विवेक पैदा होते ही वैराग्य का जन्म होता है। जिसके जीवन में वैराग्यरूपी धन आ गया है वह धन्य है।

वशिष्ठजी कहते हैं- "हे मंकी ऋषि ! तुम संसार के तट पर आ गये हो। अब तुम मेरे वचनों के अधिकारी हो।"

ब्रह्मवेत्ता महापुरूषों के वचनों का अधिकारी वही हो सकता है जिसने विवेक और वैराग्यरूपी संपत्ति पा ली है, जिसने विवेक से संसार की असारता देख ली है, जिसने विवेक से शरीर की क्षणभंगुरता देख ली है। ऐसा विवेकप्रधान जो साधक होता है उसको वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्यरूपी धन से जिसका चित्त संस्कृत हो गया है उसे आत्मज्ञान के वचन लगते हैं। जो मूढ़ हैं, पामर हैं, वे ज्ञानवानों के वचनों से उतना लाभ नहीं ले पाते जितना विवेकी और वैराग्यवान ले पाता है।

मंकी ऋषि विवेक-वैराग्य से संपन्न थे। वशिष्ठजी का दर्शन करके उनको अकृत्रिम शान्ति का एहसास हुआ। वे कहने लगेः

"भगवन् ! आप सशरीर दिख पड़ते हो लेकिन आकाश की नाईं शून्य रूप हो। आप चेष्टा करते दिख पड़ते हो लेकिन आप चेष्टा से रहित हो। आप साकार दिखाई देते हो लेकिन आप अनंत ब्रह्माण्डों में फैले हुए निराकार तत्त्व हो। हे मुनिशार्दूल ! आपके दर्शन से चित्त में प्रसन्नता छा जाती है और आकर्षण पैदा होता है। वह आकर्षण निर्दोष आकर्षण है। संसारियों की मुलाकात से चित्त में क्षोभ पैदा होता है। सूर्य का तेज होता है वह तपाता है जबकि आपका तेज हृदय में परम शान्ति देता है। विषयों का और संसारी लोगों का आकर्षण चित्त में क्षोभ पैदा करता है और आप जैसे ज्ञानवान का आकर्षण चित्त में शान्ति पैदा करता है जबकि ज्ञानी का आकर्षण परमात्मा के गीत गुँजाता है, भीतर की शान्ति देता है आनन्द देता है, परमात्मा के प्रसाद से हृदय को भर देता है।

हे मुनीश्वर ! आपका तेज हृदय की तपन को मिटाता है। आपका आकर्षण भोगों के आकर्षण से बचाता है। आपका संग परमात्मा का संग करानेवाला है। अज्ञानियों का संग दुःखों और पापों का संग कराने वाला है। जो घड़ियाँ ज्ञानी की निगाहों में बीत गई, जो घड़ियाँ परमात्मा के ध्यान में बीत गईं, जो घड़ियाँ मौन में बीत गईं, जो घड़ियाँ परमात्मा के प्रसाद में बीत गईं वे अकृत्रिम शान्ति की घड़ियाँ हैं, वे घड़ियाँ जीवन की बहुमूल्य घड़ियाँ हैं।

हे मुनिशार्दूल ! आप कौन हैं ? यदि मुझसे पूछते हो तो मैं माण्डव्य ऋषि के कुल में उत्पन्न हुआ मंकी नामक ब्राह्मण हूँ। संसार की नश्वरता देखकर, संसार के जीवों को हेय और उपादेय, ग्रहण और त्याग (छोड़ना-पकड़ना) से जलते देखकर मैं सत्य को खोजने गया। कई तीर्थों में गया, कितने ही जप-तप किये, कई व्रत और नियम किये फिर भी हृदय की तपन न मिटी।

जप, तप, व्रत और तीर्थ से पाप दूर होते हैं, कषाय परिपक्व होते हैं। कषाय परिपक्व हुए, पाप दूर हुए तो ज्ञानी का संग होते ही अकृत्रिम शान्ति मिलने लगती है, आनन्द आने लगता, मौन में प्रवेश होने लगता है। साधक अलख पुरूष में जगने के योग्य होता है।

मंकी ऋषि वशिष्ठजी का संग पाकर अकृत्रिम शांति को प्राप्त हुए, भीतर के प्रसाद को उपलब्ध हुए, परमात्मा-विश्रान्ति पायी। परमात्म-विश्रान्ति से बढ़कर जगत में और कोई सुख नहीं और कोई धन नहीं और कोई साम्राज्य नहीं।

वे घड़ियाँ धन्य हैं जिन घड़ियों में परमात्मा की प्रीति, परमात्मा का चिन्तन और परमात्मा का ध्यान होता है।

प्रतिदिन अपने अन्तःकरण का निर्माण करना चाहिए। अपने अन्तःकरण में परमात्मा का ज्ञान भरकर उसका चिन्तन करने से अन्तःकरण का निर्माण होता है। अज्ञान से, अज्ञानियों के संग से, अज्ञानियों की बातों से अन्तःकरण में अविद्या का निर्माण होता है और जीव दुःख का भागी बनता है।

चित्त में और व्यवहार में जितनी चंचलता होगी, जितनी अज्ञानियों के बीच घुसफुस होगी, जितनी बातचीत होगी उतना अज्ञान बढ़ेगा। जितनी आत्मचर्चा होगी, जितना त्याग होगा, दूसरों के दोष देखने के बजाय गुण देखने की प्रवृत्ति होगी उतना अपने जीवन का कल्याण होगा।

अगर हम अपने जीवन की मीमांसा करके जानना चाहें कि हमारा भविष्य अन्धकारमय है कि प्रकाशमय है, तो हम जान सकते हैं, देख सकते हैं। किसी व्यक्ति को देखते हैं, उससे व्यवहार करते हैं तब उसके दोष दिखते हैं तो समझो हमारा जीवन अन्धकारमय है। कोई कितना भी हमारे साथ अनुचित व्यवहार करता है फिर भी हमें अपना दोष दिखे और उसके गुण दिखें तो समझ लेना कि हमारा भविष्य उज्जवल है। इससे भी उज्जवल जीवन वह है जिसमें न गुण दिखें न दोष दिखें, संसार स्वप्न जैसा भासने लगे। संसार को स्वप्न-सा देखने वाला अपना आपा परमात्मा में विश्राम पावे, ऐसी प्यास पैदा हो जाय तो समझ लेना कि भविष्य बड़ा सुहावना है, बड़ा मंगलकारी है। इस बात पर बार-बार ध्यान दिया जाय।

देवताओं में चर्चा चली कि इस समय पृथ्वी पर सबसे श्रेष्ठ पुरूष कौन है ? सर्वगुण-सम्पन्न कौन है ? प्राणी मात्र में गुण देखनेवाला कौन है ? सर्वश्रेष्ठ व्यक्तित्व रखने वाला कौन है ?

इन्द्र ने कहा किः "इस समय पृथ्वी पर ऐसे परम श्रेष्ठ पुरूष श्रीकृष्ण हैं। उनको किसी के दोष नहीं दिखते अपितु गुण ही दिखते हैं। वे प्राणी मात्र का हित चाहते हैं। उनके मन में किसी के प्रति वैर नहीं। श्रीकृष्ण जैसा अदभुत व्यक्तित्व, श्रीकृष्ण जैसा गुणग्राहीपन इस समय पृथ्वी पर और किसी के पास नहीं है।" इस प्रकार इन्द्र ने श्रीकृष्ण की दृष्टि का, उनके व्यक्तित्व का खूब आदर से वर्णन किया।

एक देव को कुतूहल हुआ कि श्रीकृष्ण किस प्रकार अनंत दोषों में भी गुण ढूँढ निकालते हैं ! वह देवता पृथ्वी पर आया और जहाँ से श्रीकृष्ण ग्वालों के साथ गुजरने वाले थे उस रास्ते में बीमार रोगी कुत्ता होकर भूमि पर पड़ गया। पीड़ा से कराहने लगा। चमड़ी पर घाव थे। मक्खियाँ भिनभिना रहीं थीं। मुँह फटा रह गया था। दुर्गन्ध आ रही थी। उसे देखकर ग्वालों ने कहाः "छिः छिः ! यह कुत्ता कितना अभागा है ! इसके कितने पाप हैं जो दुःख भोग रहा है !"

श्रीकृष्ण ने कहाः "देखो, इसके दाँत कितने अच्छे चमकदार हैं ! यह इसके पुण्यों का फल है।"

ऐसे ही दुःख-दर्द में, रोग में, परेशानी में, विद्रोह में और अशांति के मौके पर भी जिसमें गुण और परम शान्त परमात्मा देखने की उत्सुकता है, जिसके पास ऐसी विधायक निगाहें हैं वह आदमी ठीक निर्णायक होता है, ठीक विचारक होता है। लेकिन जो किसी पर दोषारोपण करता है, भोगियों की हाँ मैं हाँ मिलता है, ज्ञानवानों की बातों पर ध्यान नहीं देता, संसार में आसक्ति करता है, अपने हठ और दुराग्रह को नहीं छोड़ता उस आदमी का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है।

शास्त्र ने कहाः **बुद्धेः फलं अनाग्रहः।** बुद्धि का फल क्या है ? बुद्धि का फल है भोगों में और संसार की घटनाओं में आग्रह नहीं रहना। बड़ा सिद्ध हो, त्रिकाल ज्ञानी हो लेकिन हेय और उपादेय बुद्धि हो तो वह तुच्छ है।

हेय और उपादेय बुद्धि क्या है ? हेय माने त्याज्य। उपादेय माने ग्राह्य। जब जगत ही मिथ्या है तो उसमें 'यह पाना है, यह छोड़ना है, यह करना है, यह नहीं करना है....' ऐसी बुद्धि जब तक बनी रहेगी तब तक वह बुद्धि अकृत्रिम शान्ति में टिकेगी नहीं। अकृत्रिम शान्ति में टिकने के लिए हेयोपादेय बुद्धि का त्याग करना पड़ता है। त्याज्य और ग्राह्य की पकड़ न हो।

फूल खिला है। ठीक है, देख लिया। बुलबुल गीत गा रही है। ठीक है, सुन लिया। लेकिन 'कल भी फूल खिला हुआ रहे, बुलबुल गाती हुई सुनाई पड़े, रोटी ऐसी ही मिलती रहे, फलाना आदमी ऐसा ही व्यवहार करे, फलानी घटना ऐसी ही घटे.....' ऐसा आग्रह नहीं। जब जगत ही मिथ्या है तो उसकी घटनाएँ कैसे सत्य हो सकती है। जब घटनाएँ ही सत्य नहीं तो उसके परिणाम कैसे सत्य हो सकते हैं। जो भी परिणाम आयेंगे वे बदलते जायेंगे। ऐसी ज्ञान-दृष्टि जिसने पा ली, गुरूओं के ज्ञानयुक्त वचनों को जिसने पकड़ लिया, वह साधक भीतर की यात्रा में सफल हो जाता है।

ब्रह्मवेत्ता की अध्यात्म-विद्या बरसती रहे लेकिन साधक में अगर विवेक-वैराग्य नहीं है तो उतना लाभ नहीं होता। बरसात सड़कों पर बरसती रहे तो न खेती होती है न हरियाली होती है। ऐसे ही जिनका चित्त दोषों से, अहंकार से, भोगों से कठोर हो गया है उन पर संतों के वचन इतनी हरियाली नहीं पैदा करते। जिनक चित्त विवेक-वैराग्य से जीता गया है उनको ज्ञानी संतों के दो वचन भी, घड़ीभर की मुलाकात भी हृदय में बड़ी शान्ति प्रदान करती है।

मंकी ऋषि का हृदय विवेक वैराग्य से जीता हुआ था। वशिष्ठजी की मुलाकात होते ही उनके चित्त में अकृत्रिम शान्ति, आनन्द आने लगा। जितनी घड़ियाँ चित्त शान्त होता है उतनी घड़ियाँ महातप होता है। चित्त की विश्रान्ति बहुत ऊँची चीज है। हेयोपादेय बुद्धिवाले को चित्त की विश्रान्ति नहीं मिलती। 'यह छोड़ कर वहाँ जाऊँ और सुखी होऊँ...' यह हेय-उपादेय बुद्धि है। जो जहाँ है वहीं रहकर हेयोपादेय बुद्धि छोड़कर भीतर की यात्रा करता है तो वह ऊँचे पद को पाता है। जो छोड़ने पकड़ने में लगा है तो वह वैकुण्ठ में जाने के बाद भी शान्ति नहीं पाता।

इसलिये हेयपादेय बुद्धि छोड़ दें। जिस समय जो फर्ज पड़े, जिस समय गुरू और शास्त्र के संकेत के अनुसार जो कर्त्तव्य करने का हो वह यंत्र की पतली की नाईं कर लिया लेकिन दूसरे ही क्षण अपने को कर्त्ता-धर्त्ता न मानें। जैसे मिट्टी में बैठते हैं, फिर कपड़े झाड़ कर चल देते हैं, इसी प्रकार व्यवहार करके सब छोड़ दो। कर्तृत्त्व चित्त में न आ जाय। कर्तृत्त्वभव और भोक्तृत्वभाव अगर है तो समाधि होने के बाद भी पतन की कोई संभावना नहीं। अष्टावक्र मुनि कहते हैं-

अकर्तृत्वं अभोक्तृत्वं स्वात्मनो मन्यते यदा।
तदा क्षीणा भवन्त्येव समस्ताश्चित्तवृत्तयः।।

"जब पुरूष अपने आत्मा के अकर्त्तापने को और अभोक्तापन को मानता है तब उसकी सम्पूर्ण चित्तवृत्तियाँ करके नाश होती हैं।"

चित्त में जब अकर्तृत्व और अभोक्तृत्व कि निष्ठा जमने लगती है तो वासनाएँ क्षीण होने लगती हैं। फिर वह ज्ञानी यंत्र की पुतली की नाईं चेष्टा करता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्म-अवगाहन

तुम्हारी जितनी घड़ियाँ परमात्मा के ध्यान में बीत जायें वे सार्थक हैं। जितनी देर मौन हो जायें वह कल्याणप्रद है। श्वास की गति जितनी देर धीमी हो जाय वह हितावह है, मंगलकारी है।

बैठते वक्त हमारा श्वास नासिका से बारह उंगल तक बाहर जाता है, चलते समय अठारह, सोते समय चौबीस उंगल तक श्वास का फुफकार जाता है और मैथुन के समय तीस उंगल तक श्वास की ऊर्जा खत्म होती है। बैठने की अपेक्षा ध्यान में श्वास बहुत कम खर्च होती है। इससे मन भी शान्त होता है, आयुष्य भी बढ़ता है। कुछ श्वास कम खर्च होने के कारण मानसिक व बौद्धिक थकान भी उतरती है।

जितनी देर हो सके उतनी देर शान्त बैठे रहो। तुम्हारे श्वास की गति मन्द होती चली जायेगी, सत्त्वगुण बढ़ता जायगा। संकल्प फलित होने लगेंगे। ध्यान करते-करते श्वास की लंबाई

कम हो जाय, बारह उंगल के बदले दस उंगल हो जाय तो तुम्हें दादुरी आदि सिद्धियाँ प्राप्त होने लगती हैं, नौ उंगल तक श्वास चलने लगे तो थोड़ा-सा ही निहारने मात्र से शास्त्रों के रहस्य समझने लग जाओगे। आठ उंगल तक श्वास की लम्बाई रह जाय तो तुम देवताओं की मसलत को जानने लग जाओगे। दूसरों के चित्त को पढ़ लो ऐसी योग्यता निखरने लगती है।

पाँच-छः उंगल तक फुफकार पहुँचे ऐसा श्वास बन जाय तो तुम्हारा चित्त खूब शान्ति और आनन्द का अनुभव करने लगेगा। तुम्हारे शरीर के वायब्रेशन सत्त्वप्रधान होने लगेंगे। श्वास की गति चार उंगल तक आ जाय तो अनुपम ओज की प्राप्ति होती है। तीन या दो उंगल तक श्वास की लंबाई आ जाय तो सविकल्प समाधि लग सकती है। एक उंगल तक श्वास आ जाय तो आनन्दानुगत समाधि की उपलब्धि हो जाती है। अगर श्वास भीतर ही थम जाय तो केवली कुम्भक की उच्च दशा, निर्विकल्प समाधि तक प्राप्त हो जाती है। तब साधना करने वाला साधक नहीं बचता। वह सिद्ध हो जाता है।

ध्यान करते वक्त देखने में तो तुम चुप बैठे हो लेकिन भीतर बहुत कुछ यात्रा कर रहे हो। बाहर से नासमझ लोग बोलेंगे कि यह कुछ नहीं कर रहा है लेकिन आपके द्वारा वास्तव में बहुत कुछ बढ़िया हो रहा है। वर्षों तक मजदूरी करके, बाहर का अथक परिश्रम करके जो न कमा सके हो वह इन ध्यान के क्षणों में कमा लेते हो। युगों तक जन्मते-मरते आये हो लेकिन उस सत्यस्वरूप परमात्मा के करीब नहीं जा पाये हो। वहाँ अब बैठे-बैठे मौन और ध्यान के क्षणों में जा रहे हो। चुपचाप बैठे-बैठे तुम्हारा मन उस आनन्द के सागर परमात्मा के करीब जा रहा है।

ध्यानावस्थित तद् गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः।
येषां तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः।।

ध्यान करते समय श्वासोच्छवास की गति को निहारते जाओ। दृढ़ संकल्प दोहराते जाओ कि मेरा चित्त परमात्मा में शान्त हो रहा है। मेरे चित्त की चंचलता मिट रही है। पाप और संताप मिट रहे हैं। कर्मों के कुसंस्कार परमात्मा के पवित्र ध्यान में धुल रहे हैं। मेरे दिल की चुनरिया रंगी जा रही है परमात्मा के रंग से।

मेरे साहेब है रंगरेज चुनरी मोरी रंग डारी।
धोए से छूटे नहीं दिन दिन होत सुरंग।।

दो भौहों के बीच आज्ञाचक्र में ध्यान करते जाओ। वहाँ अपने इष्ट देवी-देवता या किसी प्रिय पीर, फकीर अथवा प्यारे सदगुरू के विग्रह के ध्यान करो। ॐकार की रक्तवर्णी आकृति का भी ध्यान कर सकते हो।

आज्ञाचक्र में धारणा करने से बहुत सारी शक्तियों का विकास होता है। ज्ञान का अथाह खजाना खुलने की कुँजी वहाँ छुपी है। वहाँ ध्यान करते हुए ॐकार का दीर्घ स्वर से गुंजन करते जाओ। पूरी निर्भयता और साहस को अपने रोम-रोम में भर जाने दो। चिन्ता, भय, शोक, अशान्ति की कल्पनाओं को ॐकार की पवित्र गदा से भगा दो।

"ऐ भय ! ऐ चिन्ता ! ऐ परेशानी ! दूर हटो। अब हमें आत्म-खजाना मिल रहा है। ॐकार की पवित्र गदा हमारे हाथ में है। ऐ चिन्ताएँ ! तुम्हें हम चकनाचूर कर देंगे। ॐ....

ऐ दुर्बल विचार ! ऐ दुर्बल चित्त ! तुझमें ॐकार का सामर्थ्य भरा जा रहा है। अब दुर्बलता छोड़। ॐ.....

ओ नकारात्मक विचार ! ओ असफलता की कल्पनाएँ ! दूर हटो। अनन्त ब्रह्माण्डों का स्वामी परमात्मा हमारे साथ और हम भयभीत ? ईश्वर की असीम शक्तियाँ हमसे जुड़ी हुई और हम चिन्तित ? नहीं...कभी नहीं। ॐ....ॐ....ॐ....ॐ.....ॐ.....

ऐ चिन्ताएँ ! ऐ दुर्बल विचार ! दूर हटो। हम पवित्र ॐकार की गदा लेकर तुम्हें कुचल डालेंगे। हमारे साथ जगतनियन्ता परमात्मा..... हमारे हृदय में सर्वशक्तिमान ईश्वर और ऐ दुर्बल विचार ! तू हमें दुर्बल किये जा रहा है ? ॐ.....ॐ.....

भय, शोक, चिन्ता को जरा भी स्थान नहीं। सदैव तुम्हारे चित्त में परमात्मा की शक्ति मौजूद है। अपना चित्त प्रसन्न रखो। फिर तुमसे पवित्र कार्य अपने आप होने लगेंगे। अपने चित्त को परमात्मा के साथ जोड़ा करो। फिर तुम जो भी करोगे वह परमात्मा की पूजा हो जायेगी। वासनाओं को दूर फेंक दो। चिन्ताओं और निर्बलताओं को दूर भगा दो। उस प्रेमास्पद परमात्मा में अपने चित्त को परितृप्त होने दो। ॐआनंद..... ॐआनन्द.... ॐ......ॐ....ॐ......

मैं छूई मूई का पेड़ नहीं,
जो छूने से मुरझा जाता है।
मैं वो माई का लाल नहीं,
जो हौवा से डर जाता है।।

भय ! आकांक्षा ! घृणा ! चिन्ता ! तुम दूर हटो। हे हिंसा ! तू दूर हट। मुझे प्रेम के पवित्र सिंहासन पर विराजमान होने दे। ऐ संसार की आसक्ति ! अब दूर हट। हम अपने आत्मभाव में जग जा रहे हैं। ॐ....ॐ......ॐ.......

बल ही जीवन है। दुर्बलता ही मौत है। दुर्बल विचारों को दूर हटाते जाओ। आत्मबल.... आज का प्रभात आत्मप्रकाश का प्रभात हो रहा है। ॐ....ॐ.....ॐ.....

ऐ चित्त की चंचलता और मन की मलिनता ! अब तू ॐकार के पावन प्रकाश के आगे क्या टिकेगी ? ॐ.....ॐ....ॐ.....

निर्भयता.....निश्चिंतता.... निष्फिकरता..... बेपरवाही..... पूरी खुदाई....जय जय....।

जब तक नहीं जाना था तब तक ईश्वर था और जब जाना तो मेरे...आत्मा का ही वह नाम था।

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर कार्य रहे ना शेष।
मोह कभी ना ठग सके इच्छा नहीं लवलेश।।

नश्वर दुनियाँ की क्या इच्छा करना ? अपने राम में मस्त। ॐ.....ॐ.....ॐ.....

बरस रही है भगवान की कृपा। बरस रही है ईश्वर की अमीदृष्टि, खुदाई नूर। तुम्हारा रोम-रोम आत्मबल से जगता जाय। ॐ.....ॐ.......ॐ.....

भावना करो कि हवाई जहाज की नाईं शरीर में शक्ति ऊपर उठ रही है। आप चिदाकाश की ओर ऊपर उठ रहे हैं। नासमझी के कारण भय, शोक और चिन्ताओं ने हमारे मन को घेर रखा था। हम मन के भी दृष्टा और सृष्टा हैं। हम इन्द्रियों और मन के स्वामी हैं। हम देह में रहते हुए भी विदेही आत्मा हैं। हम चैतन्य हैं। जो कबीर में गुनगुनाया था, जो श्रीकृष्ण में मुस्कराया था, जो रामदास में चमका था, जो रामकृष्ण में ध्यान का रस टपका रहा था वही आत्मा हमारे पास है। नहीं.... नहीं... वही आत्मा हम हैं। ॐ......ॐ.....ॐ......

ऐ इन्सान ! राहनुमा गुरूलोग तुझे अपनी असलियत में जगाते हैं, तू इन्कार मत करना। वे तुझे अपनी महिमा में जगाते हैं, तू सन्देह मत कर, भय और चिन्ता मत कर। ॐ.....ॐ......ॐ.....

जीवन की सुषुप्त शक्तियाँ जग रही हैं। जीवन का अधोगमन बदलकर ऊर्ध्वगमन हो रहा है। हम ऊपर की ओर उठ रहे हैं। हमारा तन और मन आत्मिक बल से सराबोर हो रहा है। आज के पावन पर्व पर आत्मस्वरूप में जगने का संकल्प करेंगे। तुम्हारे में अथाह संकल्प का साम्राज्य है। ईश्वर की अदभुत संकल्प की सामर्थ्यलीला तुम्हारे में छुपी हुई है। तुम उसे जगने दो। कभी दुर्बल विचार मत आने दो, कभी नकारात्मक विचार मत आने दो। ॐ......ॐ......ॐ......

जब तक देहाभिमान की नालियों में पड़े रहोगे तब तक चिन्ताओं के बन्डल तुम्हारे सिर पर लदे रहेंगे। तुम्हारा अवतार चिन्ताओं के जाल में फँस मरने के लिए नहीं हुआ है। तुम्हारा जन्म संसार की मजदूरी करने के लिए नहीं हुआ है, हरि का प्यारा होने के लिए हुआ है। हरि को भजे सो हरि का होय। ख्वामखाह चाचा मिटकर भतीजा हो रहे हो ? दुर्बल विचारों और कल्पनाओं की जाल में बँध रहे हो ? कब तक ऐसी नादानी करते रहोगे तुम ? ॐ..ॐ...ॐ...

विद्युतशक्ति, गुरूत्वाकर्षण की शक्ति, इलेक्ट्रानिक्स की शक्ति तथा अन्य कई शक्तियाँ दुनियाँ में सुनी गई हैं लेकिन आत्मशक्ति के आगे ये शक्तियाँ कुछ नहीं। वह आत्मशक्ति हम हैं। ॐ.....ॐ......ॐ.......

अपने दिल में आत्म-सन्देह, असंभावना या विपरीत भावना होने के कारण हम उस हक से जुदा हो गये हैं।

तीन प्रकार के आवरण होते हैं। असत्त्वापादक आवरण, अभानापादक आवरण और अनानन्दापादक आवरण।

असत्त्वापादक आवरण शास्त्र के श्रवण से दूर होता है। अभानापादक आवरण मनन से दूर होता है। अनानन्दापादक आवरण आत्सस्वरूप में गोता लगाने से दूर हो जाता है। ॐ....ॐ.....ॐ.....

बल.... हिम्मत.....शक्ति....। गिड़गिड़ाना नहीं है, बलवान होना है। ॐ....ॐ.....ॐ......

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मानसिक ढंग से ॐकार का जप करते जाओ। ॐकार की आनन्ददायी शान्ति में खोते जाओ। भ्रूमध्य में सर्वपातक-नाशक, आत्मबल-वर्धक, आत्मज्ञान का प्रकाश करने वाले ॐ का ध्यान करते जाओ। भावना से भ्रूमध्य के गगनपट पर लाल रंग के ॐकार को अंकित कर दो। आन्तर मन में ॐकार का गूंजन होता जाये।

खूब शान्ति में डूबते जाओ। अपने शान्त स्वभाव में ब्रह्मभाव में परमात्म-स्वभाव में, परितृप्ति स्वभाव में शान्त होते जाओ। अनुभव करते जाओ किः **सर्वोऽहम.... शिवोऽहम्... आत्मस्वरूपोऽहम्... चैतन्यऽहम्...।** मैं चैतन्य हूँ। मैं सर्वत्र हूँ। मैं सबमें हूँ। मैं परिपूर्ण हूँ। मैं शांत हूँ। ॐ......ॐ......ॐ.......

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

साधक को अपने दोष दिखने लग जाय तो समझो उसके दोष दूर हो रहे हैं। दोष अपने आप में होते तो नहीं दिखते। अपने से पृथक हैं इसलिए दिख रहे हैं। जो भी दोष तुम्हारे जीवन में हो गये हों उनको आप अपने से दूर देखो। ॐ की गदा से उनको कुचल डालो। आत्मशान्ति के प्रवाह में उन्हें डुबा दो।

ॐ का गुंजन भीतर होता जाय अथवा ॐ शान्ति... ॐ शान्ति.... शान्ति..... शान्ति..... ऐसा मानसिक जप करते हुए आत्मा में विश्रान्ति पाते जाओ।

ॐ के अर्थ का चिन्तन करो। इससे मनोराज, निद्रा, तन्द्रा, रासास्वाद आदि विघ्नों से बच जाओगे।

आत्मशान्ति में चित्त को डुबाते जाओ। चित्त की विश्रान्ति सामर्थ्य की जननी है। चित्त की विश्रान्ति अपने स्वरूप की खबर देने वाली है। चित्त की विश्रान्ति सदियों से भटकते हुए जीव को अपने शिव-स्वभाव में जगा देती है। हजार तीर्थों में जाने से, हजारों हवन करने से, हजार व्रत रखने से वह पद नहीं मिलता जो चित्त की विश्रान्ति से मिलता है।

उपदेश व सत्संग सुनने का, ध्यान करने का फल यही है कि सुने हुए सत्यस्वरूप परमात्मा के करीब ले जाने वाले वचन ध्यान के द्वारा दृढ़ होते जायें। सुनी हुई आत्मा-परमात्मा की महिमा ध्यान के द्वारा अनुभव में आने लग जाय। सुना हुआ सत्संग केवल सुनाने वाले का ही न रहे, वह हमारा भी हो जाय। यही तो ध्यान का प्रयोजन है।

मैं कितना शान्तस्वरूप था, मुझे पता न था। मैं कितना प्रेमस्वरूप था, मुझे पता न था।

स्वर्ग के देवों को कुछ पाने के लिए कर्म करना है तो उन्हें पृथ्वी पर आना पड़ता है। यह कर्मभूमि है। सब कर्मों का जो सार है उसे सारभूत मोक्षमार्ग में हम लगे हैं। सारे कर्म-धर्मों का अर्क है आत्मशान्ति। हम उस परमानन्द पद की यात्रा में संलग्न हो रहे हैं। ध्यान का एक-एक क्षण अदभुत पुण्य अर्जित करा रही है, परमात्मा में डूबने का सुअवसर दे रही है।

अपने इष्ट को, अपने पुण्यों को धन्यवाद दो। ॐ....ॐ.....ॐ.....

जो बुद्धिमान हैं वे जानते हैं कि कब बोलना, कितना बोलना। प्रज्ञावान लोग शान्ति और आनन्द के लिए बोलते हैं, प्रेम और प्रसाद के लिए बोलते हैं। प्रेम तो केवल परमात्मा में हो सकता है और प्रसाद केवल उसी का वास्तविक प्रसाद है जिससे सब दुःख निवृत्त हो जाते हैं।

दृढ़ भावना करो किः "मैं सब हूँ। विशाल आकाश की नाईं सर्वव्यापक हो रहा है। मैं चिदाकाश-स्वरूप हूँ। सूर्य और चाँद मुझमें लटक रहे हैं। मैं चिदाकाश स्वरूप हूँ। सूर्य और चाँद मुझमें लटक रहे हैं। सब तारे मुझमें टिमटिमा रहे हैं इतना मैं विशाल हूँ। कई राजा-महाराजा इस आकाशस्वरूप चैतन्य में आ-आकर चले गये। मैं वह आकाश हूँ। मैं सर्वव्यापक हूँ। मैं कोई परिस्थिति नहीं हूँ लेकिन सब परिस्थितियों को पहचाननेवाला आधारस्वरूप आत्मा हूँ। आनन्द और शान्ति मेरा अपना स्वभाव है।

इस प्रकार अपनी वृत्ति को विशाल... विशाल गगनगामी होने दो।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अपने दिल में ॐका, परम पावन बीजमंत्र का, अत्यंत पवित्र परमात्मस्वरूप का ध्यान करते हुए हृदय को परम चैतन्य अवस्था से, शीतल आनन्द से परिपूर्ण करते जाओ। जैसे किसी कोठरी में प्रकाश फैल जाता है ऐसे ही हृदय में चिदाकाश-स्वरूप चिदघन परमात्मा-स्वरूप ॐ का चिन्तन करते ही हृदय निर्मल चिदाकाशवत् स्वच्छ हो रहा है।

दिल में शान्ति व प्रसन्नता व्याप्त हो रही है ऐसी दृढ़ भावना के साथ आत्म-शान्ति में..... आत्मानंद में डूबते जाओ... अदभुत ईश्वरीय आह्लाद को भीतर भरते जाओ। वाह.... वाह.... !

चिदानंदरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।

प्रेमस्वरूप परमात्म-रस में हृदय परितृप्ति का अनुभव करता जाय। ध्यान नहीं करना। अपने आनन्दमय स्वभाव को याद करके जग जाना है, स्वस्थ हो जाना है।

मैं आनन्दस्वरूप, सुखस्वरू, चैतन्यस्वरूप अपने स्वभाव में जग रहा हूँ। वाह वाह....! मेरा स्वभाव ही प्रसन्नतापूर्ण है। अन्तःकरण जब मेरा चिन्तन करता है तब प्रसन्न होता है। अन्तःकरण जब मेरे करीब आता है तब आनन्दित होता है। **आनन्दो ब्रह्म। ब्रह्मेति परमात्मनः।** आनन्द ही ब्रह्म है। कीर्तन के द्वारा आनन्द आये, योग के द्वारा आनन्द आये, विद्या के द्वारा आनन्द आये, ज्ञान के द्वारा आनन्द आये। ये सब मेरे ही स्वरूप हैं।

हृदय जब मेरे करीब होता है, मेरे चिन्तन में होता है तो मैं उसे आनन्द से भर देता हूँ। हृदय जब अन्य विषयों की ओर जाता है तब मैं सर्वव्यापक आनन्दस्वरूप होते हुए भी वह आनन्द नहीं ले पाता। ॐ.....ॐ......ॐ.....

मुझमें राग कहाँ ? मुझमें द्वेष कहाँ ? मुझमें कर्त्तापन कहाँ ? मुझमें भोक्तापन कहाँ ? मुझमें नात और जात कहाँ ? ये सब मन की कल्पनाएँ थी। मनीराम का खिलवाड़ था। मन का बुना हुआ जाल था। अपने आत्म-सिंहासन पर बैठकर निहारता हूँ तो मन के जाल का कोई

प्रभाव नहीं है, मन की कोई सत्ता नहीं है। मेरी सत्ता लेकर मन जाल बुन रहा था। मेरी दृष्टि उस पर पड़ते ही वह शर्मा गया। जाल बुनना छोड़ दिया। ॐ.....ॐ......ॐ.....

चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।
पूर्णोऽहम्.... परमानन्दस्वरूपोऽहम्।।

रोम-रोम पावन हो रहा है मेरे अपने स्वभाव से। यह शरीर भी पावन हो रहा है मेरे चिदानन्द स्वभाव से। इस शरीर से छूकर जो हवाएँ जाती हैं वे भी पवित्रता, शीतलता, प्रेम और आनन्द टपका रही हैं।

मैं आत्मा था, मैं चैतन्य था, मैं प्रेम स्वरूप था, मैं आनन्दस्वरूप था लेकिन संकल्प विकल्पों ने मुझे ढक रखा था। अब वे कुछ स्थगित हुए हैं तो परितृप्ति का अनुभव हो रहा है। मैं तो पहले से ही ऐसा था।

हीरा धूल में ढक गया था तब भी वैसा ही चमकदार था लेकिन लोगों को दिखता नहीं था। मैंने मन को, बुद्धि को, इन्द्रियों को, तन को पवित्र किया, प्रकाशित किया तब वे आनन्द को प्राप्त हुए। मैं तो उसके पहले भी ऐसा ही आनन्दस्वरूप था। वाह.... वाह.... !

चित्त की चंचलता होगी तब मेरा यह आनन्दस्वभाव चित्त से छुप जायगा, तब भी मैं होऊँगा वैसा ही।

मैं बोधस्वरूप हूँ। मैं जब जानने वाला चैतन्य चिदात्मा हूँ। स्वप्न की तरंगे आयी और विलय हो गई, जाग्रत के विचार व कर्म आये और बदल गये लेकिन मैं अबदल आत्मा हूँ। बचपन आया और बदल गया, मैं अबदल आत्मा हूँ। किशोरावस्था आयी और बदल गई, लेकिन मैं अबदल आत्मा वही का वही। युवावस्था आ रही है और जा रही है लेकिन मैं वही का वही। वृद्धावस्था आयेगी और जायेगी लेकिन मैं वही का वही। मैं दृष्टा मात्र चिदघन चैतन्य हूँ। ॐ.... ॐ..... ॐ.....

मैं प्रसन्न, आनन्दस्वरूप चैतन्य हूँ। नाहक दुःखद विचार करके, विरोधी विचार करके मैंने अपने स्वरूप पर विचारों की मलिन चद्दर ढक दी थी। अब ॐकार की, उस अद्वैत आनन्दस्वरूप परमात्मा की एक सुहावनी लहर द्वारा मैंने उस कल्पनाओं की चद्दर को हटाया तो मैं अपने आप में परितृप्त हो रहा हूँ। योगानन्द का अमृत, योग के द्वारा आत्मानन्द का अमृत मेरे हृदय में भरा जा रहा है।

चिन्ता, भय, विकार, मोह, माया इनको मैं जानता ही नहीं हूँ। ये सब तो मेरा मदोन्मत्त मनरूपी वजीर जानता होगा।

कैसा आनन्द ! कौन किससे कहे ! मानो, गूँगे ने गुड़ खाया।

ध्यान करने की चालाकी छोड़ दो। सत्संग में बैठने के बाद सयानापन छोड़ दो। इस मनुभाई (मन) को ध्यान करने की बहुत इच्छा होती है। वह चालाक बनता है कि 'मैं ध्यान करूँ।' अरे मनुभाई ! तू चुप हो जा। बैठा रह अपनी जगह।

अब ध्यान करेंगे तो मन अड़चन डालेगा। गाड़ी में बैठने के बाद अपनी गठरियाँ सिर पर उठाने जैसा होगा। अब तो सदगुरू कृपा की मोक्षगाड़ी में बैठ गये तो आराम फरमाओ ! ब्रह्मानन्द की गाड़ी अपने आप ले जा रही है।

आनन्द और शान्ति मेरा स्वभाव था, मुझे पता न था। प्रेम और प्रसन्नता मेरा जन्मसिद्ध स्वभाव था लेकिन कल्पनाओं ने, नादानी के विचारों ने ढक रखा था मेरे स्वभाव को। अब सन्तों के, शास्त्रों के, सदगुरू के वचनों से नादानी छूट गई। ॐकार की झाड़ू से, कुछ अहोभाव के धक्के से, कुछ श्रद्धा से विचारों की पर्तें हट गईं, कचरा साफ हो गया। तत्त्ववस्तु ज्यों की त्यों दिखने लगी, आनन्द छलकने लगा। अब खुली आँखों से मैं सर्वत्र अपने को निहार सकता हूँ। 'सब में एक, एक में सब' का अनुभव कर सकता हूँ। खुली आँखों से भी मैं मस्ती में रह सकता हूँ। अपने स्वभाव में परितृप्त हो सकता है। ॐ.....ॐ......ॐ.....

मेरी सुनी हुई सब कथाएँ फल गई। मेरे किये हुए सब जब-तप फलित हो गये। मेरी सेवा और पुण्य फलित हो रहे हैं। देहाभिमान का कचरा हटता जा रहा है और आत्मस्वभाव का नशा चढ़ा जा रहा है।

अब कुछ करने का संकल्प उठे तो ॐ की झाड़ू से उसे हटा दो। मकान बनवाना है.... दवाखाना खोलना है..... धन्धा करना है.... दूर हटो ये सब संकल्प। ये सब झील की सतह पर काई है। एक हाथ यूँ मारा, दूसरा हाथ यूँ मारा तो माया की काई दूर। फिर निर्मल पानी ही पानी। ब्रह्मानन्द ही ब्रह्मानन्द।

जगन्नियन्ता परमात्मा होकर भी चपरासी की नौकरी करनी है ? साहब को सलाम करना है ? जिसको गरज होग वह सलाम करने आयेगा। चाचा मिटकर भतीजे क्यों होते हो ? ॐ.... ॐ...... ॐ......

मुझ पूर्ण चैतन्य को किसकी आवश्यकता है ? मुझमें कर्त्तापन कहाँ ? आवश्यकताएँ तो देह की होती हैं। लाखों करोड़ों देह हुई और उनकी सब आवश्यकताएँ पूरी करते रहे फिर भी मरती ही रही। हर जन्म में बना-बनाकर छोड़ते आये जब तक नहीं किया तब तक लगता है कि मकान बनायें, बड़े भवन बनायें, भव्य आश्रम खोलें लेकिन करने के बाद लगता है कि इसको कोई सँभाल ले तो अच्छा है, हमें नहीं चाहिए।

अब करने-धरने के संकल्प सब छोड़ दो। यह ब्रह्माण्ड अपने बिना कुछ किये ही धमाधम चलता रहेगा। कितने ही मजदूर लोग बहुत कुछ कर रहे हैं बेचारे। अपने को कर्त्ता क्यों बना रहे हो ? आत्मानन्द से मुँह क्यों मोड़ रहे हो ?

'नहीं, मैं अपने को कर्त्ता मानकर नहीं कर रहा हूँ....'

अरे कर्त्ता नहीं मानते तो करने की इच्छा कैसे होती है ? ईमानदारी से खोजो। खोजकर पकड़ो कि क्या इच्छा है। उस इच्छा को यूँ किनारे लगा दो और तुम प्रकट हो जाओ। इच्छाओं के आवरण के पीछे कब तक मुँह छिपाये बैठे रहोगे ? यश की इच्छा है ? मारो धक्का। प्रसिद्धि

की इच्छा है ? मार दो फूँक। अच्छा कहलाने की इच्छा है ? मारो लात। इतना कर लिया तो सब शास्त्रों, वेदों, उपनिषदों का अभ्यास, जप-तप-तीर्थ-अनुष्ठान और सब सेवाएँ फलित हो गईं।

लेकिन सावधान ! आलस्य या अकर्मण्यता नहीं लानी है। इच्छारहित होने का अभ्यास करके आत्मदेव का साक्षात्कार करना है। फिर तुम्हारे द्वारा बहुत सारे कर्म होने लगेंगे लेकिन तुममें कर्तृत्व की बू न रहेगी।

इच्छा की पर्तों ने तुम्हें ढाँक रखा है और कुछ नहीं है... कुछ नहीं है। बहुत सरल है। सरल नहीं होता तो यह आनन्द कैसे लेते अपने स्वभाव का ? बिल्कुल सरल.... मुफ्त में।

श्री वशिष्ठजी महाराज कहते हैं- "हे रामजी ! फूल और पत्ते को मसलने में देर है, अपने स्वरूप को देखने में क्या देर है ?"

किसी देवी-देवता के दर्शन की इच्छा नहीं है। उनमें भी हमारा ही आत्मचैतन्य विलास कर रहा है। किसी परिस्थिति की इच्छा नहीं है। कुछ होना नहीं है। कुछ प्राप्त करना नहीं है। प्रभु भी नहीं चाहिए, चलो। प्रभु हमस अलग हों तो चाहिए न ? हमारा शुद्ध-स्वरूप आत्मा ही परमात्मा है। एक अद्वैत आत्मा-परमात्मा के सिवा जो कुछ दिखता है वह सब मन की कल्पनाएँ हैं। इच्छा करके कल्पनाओं के पीछे कब तक भागते फिरेंगे ?

खोजो अपने में। कोई इच्छा दिखे तो पकड़कर निकाल दो। जैसे महिलाएँ बालों में से जुएँ पकड़-पकड़कर निकालती है ऐसे चित्त में से इच्छाएँ पकड़-पकड़कर निकाल दो। अभी तो सिर जुओं से ढक गया है। कुछ भी करके इच्छाओंरूपी जुएँ हटा दो। ये इच्छाएँ हट गई तो फिर...

संकर सहज स्वरूप संभारा।
लागी समाधि अखण्ड अपारा।।

अपना स्वरूप विचारने मात्र से, सँभालने मात्र से प्रकट होता है। संस्कार घुस गये हैं कि यह करेंगे, वह करेंगे, यह पायेंगे, यह छोड़ेंगे। संकल्पों और इच्छाओं की खिचड़ी हो गई हैं।

"अब हम क्या करें ?"

कुछ नहीं करो।

"भजन करें ?"

नहीं करो भजन।

"ध्यान करें ?"

नहीं करो ध्यान भी।

"यात्रा करें ?"

कोई जरूरत नहीं।

"दुकान खोलें ?"

कभी नहीं खोलना।

"नौकरी करें ?"

नहीं।

"रसोई बनायें ?"

कोई आवश्यकता नहीं है।

कुछ नहीं करना है। प्रकृति में हो रहा है। शास्त्र की मर्यादा के मुताबिक होने दो। करने का नया संकल्प मत बनाओ। परहित के लिए होने दो।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

चित्त का निर्माण

एक समय था जब बूँद भी दरिया होकर डुबाया करती थी, गौ का खुर भी खाई होकर गिराया करता था लेकिन जब सत्संग में गये, गुरूओं की कृपा को पचाया तब अनुकूलता और प्रतिकूलता के दरिये भी बूँद से मालूम होते हैं। आत्मज्ञान की महिमा ऐसी है। साधक जब आत्मभाव में प्रतिष्ठित होता है तब जीवन से सारे दुःख विदा होने लगते हैं।

ध्यान का मतलब केवल चुपचाप हो जाना नहीं है। ध्यान में चित्त अत्यंत एकाग्र हो जाय, शान्त हो जाय, स्थिर हो जाय उससे भी वह ऊँची अवस्था है कि चित्त का निर्माण हो। चित्त का शान्त होना एक बात है और चित्त का निर्माण होना दूसरी बात है। चित्त शान्त हो जायेगा उतनी देर शान्ति मिलेगी, आनन्द आयेगा, बाद में फिर जगत सच्चा भासेगा, थोड़ा सा सुख आकर्षित कर देगा, थोड़ा सा दुःख दबा देगा। लेकिन ध्यान में अगर आत्मविचार आता है, ब्रह्मविचार आता है, परमात्मभाव के संस्कारों को दुहराकर आत्माकार भाव पैदा होते हैं तो उससे चित्त का निर्माण होता है। चित्त के शान्त हो जाने से भी चित्त का निर्माण होना ऊँची बात है।

गलत ढंग से चित्त का निर्माण हो जाता है तो वह बन्धन व दुःख का कारण बन जायगा। जैसे, चित्त का निर्माण हो गया कि मैं अमुक जाति का हूँ, यह मेरा नाम है, मैं स्त्री हूँ या पुरूष हूँ। इस प्रकार के चित्त का निर्माण हो गया तो उसके लिए आदर के दो शब्द जीवन बन जाते हैं और अनादर के दो शब्द मौत बन जाते हैं। झूठे संस्कारों से चित्त का निर्माण हो गया। वे भी दिन थे कि जब बूँद भी दरिया होकर दिखती थी और हमें डुबा ले जाती थी। जरा सा अपमान भी दरिया होकर दिखता था। जरा सा हवा का झोंका भी आँधी की नाईं दिखता था। लेकिन जब सत्संग और गुरूदेव की कृपा से, आत्मवेत्ता महापुरूष के उपदेश की कृपा से बड़े-बड़े दरिये भी कतरों की नाईं दिखते हैं। क्योंकि जो कुछ नाम-रूप हैं, सुख-दुःख हैं, अनुकूलता-प्रतिकूलता हैं वे सब माया में खिलवाड़ मात्र हैं। **मायामात्रं इदं द्वैतम्।** यह सारा प्रपंच जो दिख रहा है वह सब माया मात्र है।

देखिये सुनिये गुनिये मन माँहि।

मोहमूल परमारथ नाँही।।

चित्त का अज्ञान से निर्माण हुआ इसीलिए यह जगत सत्य भासता है और जरा-जरा सी बातें सुख-दुःख, आकर्षण, परेशानी देकर हमें नोंच रही हैं।

ध्यान के द्वारा, सत्संग के द्वारा चित्त का ठीक रूप में निर्माण करना है, चित्त का परिमार्जन करना है। चित्त शान्त हो गया तो उसके संस्कार दब गये। जब उठे तो संस्कार फिर चालू हो गये। नींद में गये ते मैं यह हूँ.... मैं वह हूँ... ये सब संस्कार दब गये। नींद में कर्जे की चिन्ता नहीं रहती। लेकिन ये दुःख दूर नहीं हुए क्योंकि चित्त में जो संस्कार पड़े हैं वे गये नहीं। ये संस्कार दबे हैं। नींद से उठने पर सारा प्रपंच चालू हो जायगा, सारी चिन्ताएँ सिर पर सवार हो जायगी।

ध्यान-भजन का लक्ष्य यह नहीं है कि तुम्हारा चित्त केवल स्थिर हो जाय, बस। ध्यान-भजन का लक्ष्य है चित्त स्थिर हो और साथ ही साथ चित्त का निर्माण हो। ब्रह्माकार वृत्ति से, ब्रह्माकार भाव से चित्त का निर्माण होगा तो तुम्हारे चित्त पर कल्पित संसार के सुख-दुःख की ठोकर नहीं लगेगी। मिथ्या संसार का आकर्षण नहीं होगा। तुम्हारे हृदय में संसार का आकर्षण नहीं होगा तो वासना नहीं उठेगा। वासना नहीं उठेगी तो दुबारा जन्म लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। आपका मोक्ष हो जायगा, बेड़ा पार हो जायगा।

पूजा करते हैं ठाकुरजी की, मंदिर में जाते हैं, मस्जिद में जाते हैं, गिरजाघर में जाते हैं लेकिन चित्त का निर्माण नहीं करते हैं तो संसारयात्रा का अन्त नहीं आता। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययं तत्।।

'जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्ति रूप दोष को जीत लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूप में नित्य स्थिति है और जिनकी कामनाएँ पूर्ण रूप से नष्ट हो गई हैं' - वे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानी जन उस अविनाशी परम पद को प्राप्त होते है।

चित्त के साथ, मन-इन्द्रियों के साथ तादात्म्य का जो संग है, संसार के सम्बन्धों से जो दोष लग जाता है वह गिरा देता है। चित्त का ठीक से निर्माण हो जाय तो अध्यात्म में नित्य रमण हो जाय, कामनाएँ निवृत्त हो जायें, द्वन्द्वों से मुक्ति हो जाये। सुख और दुःख, मान और अपमान, अनुकूलता और प्रतिकूलता यश और अपयश, तन्दुरूस्ती और बीमारी, जीवन और मृत्यु, ये सब द्वन्द्व हैं। जो तन्दुरूस्ती से सुखी है वह बीमारी से दुःखी होगा। जो यश से सुखी होता है वह अपयश से दुःखी होगा। जो जीने में सुख मानेगा वह मरने में दुःखी होगा। लेकिन जीना मरना, मान-अपमान ये सब चित्त में देहात्मभाव के संस्कार पड़े हैं। अगर चित्त का निर्माण हो गया कि जीना मरना ये सब मेरा नहीं, माया का है, मेरा नहीं, इस देहरूपी खिलौने का है, यह देहरूपी खिलौने कई बार जीते हुए दिखते है, कई बार मरते हुए दिखते हैं फिर भी मेरी कभी

मौत नहीं होती, तो शूली पर चढ़ते हुए भी दुःख नहीं होगा। लोगों को लगेगा कि मनसूर शूली पर चढ़े, ईसा क्रॉस पर चढ़े, अमुक बुद्ध पुरूष ने ध्यान करते हुए शरीर छोड़ा और मर गये। लोगों को ऐसा लगेगा लेकिन उन महापुरूषों का अनुभव है कि वे कभी मरते नहीं। वे कभी बिगड़ते नहीं, कभी बनते नहीं। वास्तव में जीवमात्र का जो असली स्वरूप है वह बनने बिगड़ने से बहुत ऊँचा है। बनता बिगड़ता तुम्हारा शरीर है, बनता बिगड़ता तुम्हारा मन है, बनता बिगड़ता तुम्हारा भाव है लेकिन तुम्हारा स्वरूप, तुम्हारा आत्मा कभी बनता बिगड़ता नहीं।

चित्त का निर्माण होता है आत्मविचार से। ध्यान करें और शून्यमनस्क नहीं लेकिन अनात्मप्रवाह का तिरस्कार करें और आत्मप्रवाह को चलायें। आत्मभाव को चलायें और देहभाव को हटायें। ब्रह्मभाव को जगाना और देहभाव को अलविदा देना, यह है चित्त के निर्माण की पद्धति। इस प्रकार ध्यान होगा तो मस्त हो जायेंगे। ध्यान के वक्त भी मस्त और ध्यान के बाद भी मस्त। इस प्रकार चित्त का निर्माण हो जायगा तो जो संसार बूँद होकर भी दरिया बनकर डूबता था वह अब दरिया होकर आयेगा तो भी बून्द होकर भासेगा। जरा-जरा बात से सुख-दुःखादि द्वन्द्व परेशान कर रहे थे वे अब प्रभाव नहीं डालेंगे। जितने प्रमाण में चित्त का निर्माण होता जायेगा उतने प्रमाण में **द्वन्द्वैर्विमुक्ताः** होते जायेंगे।

सारे जप, तप, सेवा, पूजा, यज्ञ, होम, हवन, दान, पुण्य ये सब चित्त को शुद्ध करते हैं, चित्त में पवित्र संस्कार भरते हैं। प्रतिदिन कुछ समय अवश्य निष्काम कर्म करना चाहिए। चित्त के कोष में कुछ आध्यात्मिकता की भरती हो। तिजोरी को भरने के लिए हम दिनरात दौड़ते हैं। जेब को भरने के लिए छटपटाते हैं लेकिन तिजोरी और जेब तो यहीं रह जायेंगे। हृदय की तिजोरी साथ में चलेगी। इस आध्यात्मिक कोष को भरने के लिए दिन भर में कुछ समय अवश्य निकालना चाहिए। संध्या-वन्दन, पूजा-प्रार्थना, ध्यान-जप, निष्काम कर्म इत्यादि के द्वारा चित्त का निर्माण कीजिये।

उच्च विचार करते हुए हृदय में खुले आकाश की विशालता भर जाने दो। ॐकार का पवित्र जप करते-करते हृदय को विशाल होता अनुभव करो। शान्ति और आनन्द से हृदय भरा जा रहा है। यह आत्मानन्द की... विशुद्ध परमात्मा की, चिदानन्द-स्वरूप परमात्मा की झलक पाने का तरीका है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

'परिप्रश्नेन....'

प्र. इन्द्रियों को विषयों से कैसे बचायें ?

३. भोजन छोड़ने से, उपवास करने से, गाय-भैंस का दूध छोड़कर बकरी का दूध पीने से, रोटी छोड़कर मूँग भिगोकर खाने से शरीर में शक्ति नहीं होती तो विषयवासना शान्त हो जाती है। लेकिन इस उपाय से संसार में सुखबुद्धि नहीं जाती। ब्रह्मवेत्ताओं को आत्मा-परमात्मा का सुख मिल जाता है इसलिए संसार में रहते हुए भी संसार में उनकी सुखबुद्धि नहीं होती।

साँप ठण्ड में ठिठुर जाता है तो शान्त पड़ा रहता है, काटता नहीं। सूर्य की धूप निकलते ही वह कब काट ले, कोई पता नहीं। ऐसे ही अमुक आहार व नियमों से मन को थोड़ा शान्त कर लेते हैं। फिर जब मौका मिल जाता है तो मन फिर भड़क उठता है। मन को विषयों से शान्त कर देना अच्छा है, संयम करना ही चाहिए लेकिन साथ ही साथ परमात्मा का रस पा लेना चाहिए।

मनोवैज्ञानिकों ने कुछ प्रयोग किये। जो अति जातीय आवेगवाले कामी युवक थे उनका खान-पान ऐसा रखा कि वीर्य बने ही नहीं। फिर उनको लड़कियों के बीच रखा तो बड़े ब्रह्मचारी दिखे। शान्त रहे। आवेग की कोई चेष्टा नहीं की। कुत्तों पर भी प्रयोग किये गये। वे भी ऐसे रहे। फिर जब उनको पौष्टिक भोजन देना शुरू किया तो वे ही कुत्ते पूँछ हिलाते कुत्तियों के पीछे भागने लगे। वे युवक भी पौष्टिक भोजन के आहार से पहले जैसे ही कामातुर होने लगे।

'मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी' - ऐसा नहीं होना चाहिए। जीवन में, शरीर में शक्ति न हो, इन्द्रियों में बल न हो तो सब ब्रह्मचारी हैं। आप शत्रु को परास्त नहीं कर सकते और माफ कर दिया तो क्या बड़ी बात है ? उसको छिन्न भिन्न करने का सामर्थ्य है फिर भी माफ कर दिया तो बड़ी बात है। क्षमा वीरों को शोभा देती है, कायरों को थोड़े ही शोभा देती है !

ऐसे ही बलवानों को ब्रह्मचर्य शोभा देता है।

कोई कहे किः 'मेरे को धन का अभिमान नहीं।'

अच्छा ! कितना धन है तुम्हारे पास ?

"पहले बहुत था लेकिन अभी... अभी तो कर्जा होगा पच्चीस हजार का।"

तो धन का अभिमान क्या करेगा तू ?

सावन के पवित्र महीने में भागवत की कथा हो रही थी। एक दिन एक संत मंच पर पधारे। श्रोताओं से बोले किः "आप लोग भगवान के भक्त हो। भागवत की, रामायण की कथाएँ वर्षों से सुनते आये हो। पुण्य कमाते आये हो। आपमें से जिसको मित्रों में राग और शत्रु में द्वेषबुद्धि न हो ऐसे राग-द्वेषरहित चित्तवाले लोग खड़े हो जायें। मैं अभी-अभी उन्हें भगवान का दर्शन करा दूँ।"

संत ने एक बार, दो बार, तीन बार दुहराया। कथाकार को भी चिन्ता होने लगी कि हजारों श्रोताओं में से कोई नहीं उठता ! संत बार-बार कहने लगे किः "आप लोगों में से राग-द्वेष से रहित लोग खड़े हो जायें। मैं उन्हें आत्म-साक्षात्कार करा दूँगा, भगवान के दर्शन करा दूँगा। उसके दर्शन से दूसरों का भी भला हो जायेगा।"

सब लोग सिर झुकाकर बैठे रहे। सभा मण्डप में सन्नाटा छा गया। इज्जत का सवाल हो गया। आखिर में एक नब्बे साल का बूढ़ा उठ खड़ा हुआ। बोलाः "बाबा जी ! मैं हूँ।"

"अच्छा ! इतने लोगों में एक भी मिल गया तो भी ठीक है। आप तो निहाल हो जाओगे, आपके दर्शन से और लोग निहाल होने लगेंगे। अच्छा ! अब बताओ कि आपने राग-द्वेष कैसे निवृत्त किये ?"

"बाबा जी ! मेरी उम्र नब्बे साल की है। मेरी पत्नी मर चुकी है। मेरा इकलौता बेटा था वह भी प्रभु को प्यारा हो गया। सब मित्र-साथी भी एक-एक करके चल बसे। परिवार में और मित्रमण्डल में कोई नहीं और शत्रु भी कमबख्त सब मर मिट गये। अब मुझे किसी से राग-द्वेष नहीं है।"

स्नेही और शत्रु मर गये लेकिन राग-द्वेष तो नहीं मरा। वह जिन्दा है। कोई चीज नहीं है इसलिए उसका रस अपने भीतर नहीं है ऐसी बात नहीं है।

निराहार रहने से विकार तो शान्त हो जाते हैं लेकिन जगत में सुखबुद्धि का, संसार में रस का अभाव नहीं होता। रस पाने की इच्छा, सुखी होने की इच्छा भीतर से नहीं जाती। ठण्ड से ठिठुरे हुए साँप का विष अमृत में बदला नहीं। जब तक परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता तब तक भीतर के विकार निर्विकारता का रूप नहीं लेते।

ऐसा भी नहीं कि साक्षात्कार हो जाने के बाद ज्ञानी संसार से उपराम हो जायगा। नहीं, वह खायेगा, पियेगा, करेगा, धरेगा, बेटे को जन्म देगा, काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार ये सब मसाला उसके पास होगा लेकिन वह उन सबका उपयोग करेगा, उनमें सुखबुद्धि से उनके आधीन नहीं होगा। इसीलिए ज्ञानी को जीवन्मुक्त कहते है। साधारण लोग सुख भोगने के लिए विषय विकारों के आधीन हो जाते हैं और ज्ञानी स्वाधीन रहकर उनका उपयोग कर लेगा।

श्रीवशिष्ठजी महाराज के सौ बेटे थे। श्रीकृष्ण ने सुदर्शन उठाया। श्रीराम ने धनुष उठाया। बिना क्रोध के कंस और रावण को कैसे मारा ? उन्होंने क्रोध का उपयोग किया।

तुम कमरा बन्द करके, अन्दर से कुण्डा लगाकर बैठो तब स्वतन्त्र हो। जब चाहो, दरवाजा खोलकर बाहर निकल सकते हो। लेकिन बाहर से कोई दरवाजा बन्द कर दे तो तुम हो गये पराधीन। ऐसे ही विकारों के, परिस्थितियों के आधीन जीना पराधीनता है। विकार परिस्थितियों को अपने आदेश में चलाना स्वाधीनता है। इसीलिए श्रीकृष्ण को सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियाँ होते हुए भी उनका इतना ज्ञान कि आज भी उनकी गीता पूजी जा रही है। संसारी की दो पत्नियाँ भी आ जाय तो भी बेड़ा गर्क। अरे, एक पत्नी भी नाक में दम कर देती है।

ज्ञानी को जगत में से रसबुद्धि चली जाती है। उसको आत्मसुख मिलता है तो विषयों में सुखबुद्धि नहीं रहती। जो लोग रसबुद्धि से विषय भोगते हैं वे फँसते हैं। स्वाभाविक उपयोग कर लिया तो कोई बात नहीं। आपको भूख लगी। आपका उद्देश्य था पेट भरना। किसी ने आकर बढ़िया भोजन आपको खिला दिया। इसमें कोई दोष नहीं। लेकिन आपका पेट भरा है फिर भी

स्वाद लेने के लिए व्यंजन बनवाये, मजदूरी की और करवाई तो यह भोजन में रसबुद्धि अनिष्ट का कारण है।

असली रस तो परमात्मा का है वह रस मिल गया तो ऐसी कौन-सी चीज है जो ज्ञानी को संसार में आकर्षित करे ? ठीक है, व्यवहार में बोले, चले, लिया, दिया, लेकिन ज्ञानी व्यवहार में बँधता नहीं। मामूली आदमी पाँच सौ की नौकरी में बँध जाता है लेकिन जो सम्राट है उसको पाँच हजार की नौकरी भी क्या आकर्षित करेगी ?

कबीर के आगे कई ललनाएँ आयीं। शिष्य होकर आयी तो ठीक है, बातें करें, मिलें-जुलें लेकिन वे समझें कि अपने नखरे करके कबीर को फँसायेंगे तो गलती में हैं।

चलरी ठगनी ! ठुमक ठुमक नयननको क्यों ठुमकावे।
तेरे हाथ कबीरो नहीं आवे।।

कोई समझे कि मैं रूप लावण्य से, अलंकार-आभूषणों से किसी ज्ञानी को फँसाऊँ, पैसे देकर ज्ञानी को अपना बनाऊँ, धौंस देकर ज्ञानी से आशीर्वाद ले लूँ, तो वह धोखे में है। जिसको आत्मज्ञान हो गया, आत्मरस मिल गया वह किसी रस से, किसी ज्ञान से, किसी बल से प्रभावित नहीं होगा। चार पैसे के चने लेकर खाने लगे हैं यह मौज की बात है। दरिद्र आदमी चना खाता है वह अलग बात है लेकिन अमीर आदमी चना खाता है तो मौज है, विनोद है। ऐसे ही ज्ञानी के लिए सारा संसार विनोद मात्र है। ....और हम लोग संसार में फँस मरते हैं।

जो रसबुद्धि से विषय-भोग भोगता है वह विवेकी होगा तो भी उसकी इन्द्रियाँ उसके मन को बलपूर्वक हर लेती हैं। मजा लेने के लिए भोग भोगा तो सजा जरूर भोगेगा। ऐसा कोई सुख नहीं जो बाद में दुःखी न करे। इसलिए हे अन्नदाता ! संसार से सुख लेने की इच्छा ही छोड़ दो। संसार में सुख का तो लेबल है, अन्दर दुःख भरा है।

एक आदमी ने गुलाब के पौधे पर सुन्दर खिला हुआ फूल देखा। झट से तोड़ कर नाक पर रख दिया। फूल में बैठी थी ततैया। फट से मार दिया डंक उसके नाक पर। 'ओ बाप रे !'

ऐसे ही संसार के विषयों में दिखती सुन्दरता है लेकिन अन्दर ततैया बैठी होती है। दिखता सुख है लेकिन भरी हैं मुसीबतें। प्रारम्भ में लगता है कि संसार में सुख है लेकिन बाद में सारी जिन्दगी संसार की गाड़ी खींचते खींचते दम निकलता है। मनुष्य आखिर में पश्चाताप करता हुआ मर जाता है।

दुःख को हम लोग आमंत्रित करते हैं। वास्तव में दुःख है नहीं। दुःख बनाने की फैक्टरी हमारे साथ लगी हुई है। कैसे ? हम सुखी होने के लिए भागते हैं बाहर। यह बाहर भागना ही दुःख को आमन्त्रण देता है। जितनी तेजी से भागे उतनी ही तेजी से दुःख मिलेगा। ज्ञानी सुख लेने के लिए बाहर भागते नहीं। वे दुःख मिटाने के लिए भी बाहर भागते नहीं। बल पाने के लिए भी बाहर नहीं भागते।

एक जगह पर ज्ञानी सत्संग कर रहे थे। एकाएक जोरों से आँधी चली। छत के टीन छटपटाने लगे। भक्त लोग सब भाग गये। पक्के मकानों में आश्रय ले लिया। थोड़ी देर में आँधी शान्त हो गई। वापस आकर देखा तो स्वामी जी वैसे ही बैठे हैं। पूछाः

"बाबाजी ! इतनी आँधी चली, हम भाग गये। आप नहीं भागे ?"

"हम भी भागे। तुम बाहर भागे, हम भीतर भागे।"

अन्तर्यामी परमात्मा से जुड़ जाओ तो प्रकृति की सेवा पाना कोई बड़ी बात नहीं है। परमात्मा से मिल जाओ, ईश्वर में डूब जाओ। तुम नहीं कर सकते, ईश्वर सब कुछ कर सकता है।

तुममें और ईश्वर में क्या फर्क होता है ?

तुम जब संसार से सुख लेने की इच्छा करते हो तो दो पैसे के हो जाते हो। संसार से सुख लेने की इच्छा छोड़कर ईश्वर में गोता मारते हो तो ईश्वर हो जाते हो। यह महापुरूषों का अनुभव है, शास्त्रों का प्रमाण है। भगवान श्रीकृष्ण भी कह रहे हैं-

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।।

"हे अर्जुन ! जिस काल में पुरूष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भली भाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है।"

जो अपने आप में तृप्त है, अपने आप में आनन्दित है, अपने आपमें खुश है वह स्थितप्रज्ञ है। **तस्य तुलना केन जायते ?** उसकी तुलना और किससे करें ? वह ऐसा महान हो जाता है। ऐसे महापुरूष का तो देवता लोग भी दर्शन करके अपना भाग्य बना लेते हैं। तैंतीस करोड़ देवता भी ऐसे महापुरूष का आदर करते हैं तो औरों की क्या बात है ?

ईश्वर में सुखबुद्धि होनी चाहिए। संसार में सुख लेने की जो हमारी आदत है वह हमें बुरी तरह दुःख में डाल देती है। वह आदत पुरानी है, कई जन्मों की है। इसलिए अभ्यास करना पड़ता है। साधन-भजन इसीलिए करने पड़ते हैं कि गन्दी आदतें पड़ गई हैं। नहीं तो ईश्वर दूर थोड़े ही हैं कि उसको पाने के लिए अभ्यास की जरूरत पड़े ! गन्दी आदतें मिटाने के लिये साधन-भजन-ध्यान करना पड़ता है। बाहर सुख लेने की आदतें ही वे गन्दी आदतें हैं।

कोई वाह वाह करे तो कान का सुख मिले, अच्छा खायें तो जीभ का सुख मिले, बढ़िया फिल्म देखें तो आँख का सुख मिले। बढ़िया शय्या हो, फूल बिछे हों, इत्र-तेल-फुलेल को छिड़काव हो, रानि साहिबा पैर दबा रहीं हैं, आहाहा.....! यह चमड़ी का सुख हुआ। ये सब भी आखिर कितने दिन ?

इन तुच्छ सुखों में हम लोग बरबाद हो जाते हैं और मजे की बात है कि जब अपना हृदय प्रसन्न होगा तभी वहाँ से सुख आयेगा। चित्त में अशान्ति है, बेचैनी है तो फूलों की शय्या क्या करेगी ? तार आ जाय कि फलाना स्नेही सख्त बीमार है तो आइसक्रीम क्या मिठास देगी ?

इन सुखों जरा सा झटका सहने की भी ताकत नहीं है। फूलों की शय्या पर कामसुख में डूब रहे थे। आपस में मनमुटाव हो गया, अहं का टकराव हो गया तो बन गये एक दूसरे के दुश्मन ! पति-पत्नी तलाक ले लेते हैं। सचमुच उसमें सुख होता तो तलाक क्यों लेते ? लड़ते क्यों ?

ऐसा कोई भोग नहीं जो भोगनेवालों को बेजार न कर दे। भोग प्रारम्भ में तो सुखद लगते हैं लेकिन बाद में उनका परिणाम दुःखद आता है। योग शुरू में जरा परिश्रमवाला लगता है लेकिन बाद में अमृत जैसा अमरफल दे देता है।

शुरू में जरा मीठा-मीठा लगे और अन्त में विष जैसा लगे यह भोगों का फल है। शुरू में जरा कटु लगे लेकिन अन्त में सदा के लिए मीठा रहे यह भगवान की भक्ति का, योग का, ज्ञान का फल है।

शुरू में जब ज्ञानी संत महापुरूषों के पास जायेंगे तो बैठकर ऊबेंगे, अदब रखेंगे, शिष्टाचार करेंगे, सोना, खाना, पीना व्यवस्थित नहीं रहेगा। प्रारम्भ में कठिन लगेग लेकिन उनसे ऐसा पायेंगे कि महाराज ! राजाओं के भी राजा हो जायेंगे।

हम जब सदगुरूदेव के पास गये थे तो शुरू में जरा कठिनाइयाँ थीं। मूँग उबालकर खा लेते। नगरसेठ का बेटा होकर झाड़ू लगाते, बर्तन माँजते, आश्रम में सेवा करते। गुरूदेव तो नहीं कहते लेकिन हम सेवा छीन लेते थे। आश्रम में लोग कभी आते थे तो रसोई के बड़े बर्तन भी होते थे। पहाड़ी पथरीली मिट्टी या कोयले की राख होती थी बर्तन माँजने के लिए। हाथ में चीरे पड़ जाते थे, खून निकलता था तो पट्टी बाँधकर बर्तन माँज लेते थे। उस समय देखने वालों को लगता होगा कि बड़ा दुःख भोग रहा है। लेकिन अब लगता है वाह ! ऐसा मिला है कि कभी खूट नहीं सकता। ऐसा रस दे दिया है गुरू की कृपा ने।

सात्त्विक सुख पहले जरा दुःख जैसा लगता है। बाद में उसका फल बड़ा मधुर होता है। राजसी सुख पहले सुखद लगता है लेकिन बाद में मुसीबत में डाल देता है। तामसी सुख में पहले भी परेशानी और बाद में भी परेशानी...घोर नर्क।

भगवद् गीता में भी कहा हैः

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धि प्रसादजम।।

'जो आरम्भकाल में विष के तुल्य प्रतीत होता है परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है वह परमात्म विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न होने वाला सुख सात्त्विक कहा गया है।'

विषयेन्द्रिय संयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।।

'जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है, वह पहले, भोगकाल में अमृत के तुल्य प्रतीत होने पर भी परिणाम में विष के तुल्य है इसलिए वह सुख राजस कहा गया है।'

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।

निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।।

'जो सुख भोगकाल में तथा परिणाम में भी आत्मा को मोहित करने वाला है - वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न सुख तामस कहा गया है।'

(गीताः 18.37.38.39)

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्र. - इन्द्रियों को रस लेने की आदत पड़ गई है तो क्या करना चाहिए ?

उ. - बार-बार भगवान से ईमानदारी से प्रार्थना करनी चाहिए किः "हे प्रभु ! इन्द्रियाँ मुझे घसीटकर भोगों में ले जाती हैं। हे नाथ ! तू दया कर। मैं जन्मों से भटका हूँ। अभी भी आदत ऐसी ही गन्दी है। देखने के पीछे, चबाने के पीछे, वाह-वाह सुनने के पीछे मेरा समय बरबाद हो रहा है। हे प्रभु ! तू मुझे कृपा-प्रसाद दे।" ऐसा करके भगवान के शरण चले जाओ। विकार उठे उसी समय भगवान से प्रार्थना करने लगो। ऐसा करने से बच जाओगे और कभी फिसल भी जाओ तो निराश मत हो। फिर से उठो। फिर से प्रार्थना करो। हजार बार गिर जाओ तो भी निराश मत हो। आखिर तुम्हारी ही विजय होगी। भीतर का रस मिलने लग जायगा। वह रस ठीक से मिल गया फिर विकारों में ताकत नहीं तुम्हें बाँध सकें।

जिन्दा चूहा बिल्ली को नहीं मार सका तो मरा हुआ चूहा बिल्ली को क्या मारेगा ? ज्ञानी की बुद्धि को संसाररूपी चूहा नहीं फँसा सकता। साधक था तभी भी नहीं फँसा, तभी तो साधक हुआ। साधक अवस्था में नहीं फँसा तभी तो यहाँ आया। फँसता तो संसार के चक्कर में जाता। संसार में जन्म लिया, संसार में रहा, माँ-बाप, भाई-बहन, कुटुम्बी-पड़ोसियों के बीच रहा फिर भी मोह ममता को चीरता हुआ सत्संग में पहुँचा, गुरू के पास पहुँचा। अभी आप यहाँ पहुँचे हैं न ? जिन्दा संसाररूपी चूहा आपकी बुद्धिरूपी बिल्ली को फँसा नहीं सका। तभी तो आप ब्रह्मज्ञान के सत्संग में पहुँचे। ज्ञान हो जाय, बोध हो जाय फिर संसार क्या बाँधेगा आपकी बुद्धि को ? जगत का मिथ्यात्व पक्का हो गया तो फिर वह बुद्धि को दबा नहीं सकता। अभी भी जगत सच्चा लग रहा है फिर भी वह बुद्धि को दबा नहीं सकता इससे ईश्वर के मार्ग पर पहुँचे हो। इसीलिए सत्संग और वेदान्त में रूचि हो रही है। जगतरूपी चूहे का प्रभाव ज्यादा होता तो बुद्धिरूपी बिल्ली दबी रहती है।

जिसकी इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं उसकी बुद्धि परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाती है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्र. - ईश्वर के परायण नहीं हुए तो क्या होगा ? करोड़ों लोगों की तरह हम भी ऐसे ही खायें, पियें और जियें तो क्या होगा ?

उ. - ईश्वर परायण न होने से विषयों का चिन्तन होगा। विषयों के चिन्तन से कामना उठेगी। कामना पूरी होगी तो आसक्ति होगी। कामना पूरी नहीं होगी तो क्रोध होगा। क्रोध होगा तो बुद्धि का नाश होगा। बुद्धि का नाश हुआ तो सर्वनाश हुआ।

जो भगवान का चिन्तन नहीं करेगा उसको संसार का चिन्तन होगा। संसार का चिन्तन होगा तो पदार्थ पाने की इच्छा होगी। पदार्थ मिलेंगे तो छूट न जाय इसकी चिन्ता होगी। नहीं मिलेंगे तो जो अड़चन डालते हैं उन पर क्रोध होगा। क्रोध होगा तो बुद्धि की योग्यता क्षीण हो जायगी। योग्यता क्षीण हुई तो मोह होगा। मोह सब व्याधियों का मूल है। फिर बनेगा वृक्ष, बनेगा घोड़ा, बनेगा भैंसा। जो आदमी विषय विकारों में फँसा रहता है उसकी बुद्धि दबी रहती है, ठीक से काम नहीं देती।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्र. - पतन किसका नहीं होता ?

उ. - वशीभूत अंतःकरण वाला पुरूष राग-द्वेष से रहित और अपनी वशीभूत इन्द्रियों के द्वारा विषयों का आचरण करता हुआ भी प्रसन्नता को प्राप्त होता है। वह उनमें लेपायमान नहीं होता। उसका पतन नहीं होता। जिसका चित्त और इन्द्रियाँ वश में नहीं है वह चुप होकर बैठे तो भी संसार का चिन्तन करेगा। ज्ञानी संसार में बैठे हुए भी अपने स्वरूप में डटे रहते हैं।

भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. श्रीराधाकृष्णन् अच्छे चिन्तक माने जाते हैं। उन्होंने एक कहानी लिखी हैः

एक भठियारा था। उसको हर रोज स्वप्न आता कि मैं चक्रवर्ती सम्राट हूँ। वह अपना काम निपटाकर जल्दी-जल्दी सो जाता उस मधुर स्वप्नलोक में जाने के लिए। बाहर के जगत में वह भठियारा था। खाने-पीने को भी पर्याप्त नहीं था। गुजारा चलाने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। लेकिन धीरे-धीरे वह स्वप्न में सुखी होने लगा तो बाहर के जगत में रूचि कम होने लगी।

प्रतिदिन स्वप्न में देखता कि मैं चक्रवर्ती सम्राट बन गया हूँ। छोटे-छोटे राजा लोग मेरी आज्ञा में चलते हैं। छनन-छनन करते हीरे, जवाहरात के गहनों से सजी ललनाएँ चँवर डुला रही हैं।

एक दिन स्वप्न में वह बाथरूम जाने उठा तो पास में जलती हुई भट्ठी में पैर पड़ गया। जलन के मारे चिल्ला उठा। सो तो रहा था भट्ठियों के बीच लेकिन स्वप्न देख रहा था कि सम्राट है, इसलिए वह सुखी था।

किसी भी परिस्थिति में आदमी का मन जैसा होता है, सुख-दुःख उसे वैसे ही प्रतीत होते हैं। ज्ञानी का मन परब्रह्म में होता है तो वे संसार में रहते हुए, सब व्यवहार करते हुए भी परम सुखी हैं, ब्रह्मज्ञान में मस्त हैं।

आदमी का शरीर कहाँ है इसका अधिक मूल्य नहीं है। उसका चित्त कहाँ है इसका अधिक मूल्य है। मंदिर में बैठा है पुजारी। सोच रहा है कि कब बारह बजें और लड्डू लेकर पुजारिन के पास जाऊँ। तो वह मंदिर में नहीं है, पुजारिन के पास है। चित्त परमात्मा में है और आप संसार में रहते हैं तो आप संसार में नहीं हैं, परमात्मा में हैं।

प्रभातकाल में उठो तब आँख बन्द करके ऐसा चिन्तन करो कि मैं गंगाकिनारे पर गया। पवित्र गंगामैया में गोता लगाया। किसी संत के चरणों में सिर झुकाया। उन्होंने मुझे मीठी निगाहों से निहारा।

पाँच मिनट ऐसा मधुर चिन्तन करो, आपका हृदय शुद्ध होने लगेगा, भाव पवित्र होने लगेगा।

सुबह उठकर देखे हुए सिनेमा के दृश्य याद आयेः 'आहाहा... वह मेरे पास आयी, मुझसे मिली.....' आदि आदि। तो देखो, सत्यानाश हो जायगा। कल्पना तो मन से होगी लेकिन तन पर भी प्रभाव पड़ जायगा। कल्पना में कितनी शक्ति है !

संत-महात्मा-सदगुरू-परमात्मा के साथ विचरते हैं, समाधि लगाते हैं, उनका स्मरण-चिन्तन करते हैं तो हृदय आनन्दित होता है।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्र. - किसकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती ?

उ. - जो असंयमी है, गुरू के ज्ञान को पचाता नहीं है उसकी बुद्धि स्थिर नहीं रहती। जो संयमी है, गुरूमुख है उसकी बुद्धि शुद्ध, संयमी और दृढ़ निश्चयी हो जाती है।

बुद्धि का स्थिर होना बहुत बड़ी उपलब्धि है। उसमें असीम शक्ति आ जाती है। स्थिर बुद्धि वाला यदि संकल्प कर दे तो सारा राज्य बदल जाय। ऐसी ताकत होती है स्थिर बुद्धिवाले में। वह वरदान दे सकता है। **जो न करे राम वह करे किन्नाराम।** स्थिर बुद्धि वाले में इतना प्रभाव होता है। खुदा भी पूछे कि बन्दा ! अब तेरी क्या रजा है ? स्थिर बुद्धि होना बच्चों का खेल नहीं। वह बड़ा महान कार्य है। राजा होना इतनी महत्ता नहीं रखता। राजा भी स्थिर बुद्धि वाले के चरणों में पड़ जाय तो राजा निहाल हो जाय। महर्षि वशिष्ठ स्थिर बुद्धि वाले थे। राजा दशरथ उनके चरणों में पड़े तो भगवान राम को प्रकट होना पड़ा। यह है स्थिर बुद्धिवालों का चमत्कार ! अभी तक राजा दशरथ का नाम जनता की जिह्वा पर नाच रहा है। उस समय में और भी कई राजा होंगे न ? लेकिन दशरथ जी स्थिरबुद्धिवाले आप तो निहाल हो ही जाते हैं लेकिन उनकी शरण जाने वाले का भी कितना कल्याण हो जाता है ! मतंग ऋषि स्थिर बुद्धि के थे। शबरी भीलनी उनकी शरण गई। कितनी ऊँचाई प्राप्त कर ली उसने ! उस जमाने के राजाओं को भी हम लोग इतना नहीं जानते जितना शबरी को जानते हैं।

मतंग ऋषि ने शबरी से कह दिया कि तुझे राम मिलेंगे। शबरी ने यह नहीं पूछा कि, 'सचमुच मिलेंगे ?' गुरू ने कह दिया, बात पूरी हो गई। श्रद्धा हो तो शबरी जैसी। 'मेरे में योग्यता नहीं है' - ऐसा शबरी ने कहा नहीं। गुरूजी ने कह दिया तो बात पक्की हो गई। योग्यता है, नहीं है वह गुरू जानें।

दोष इतना दोष नहीं जितना दोषों को अपना मानना और ईश्वर के रास्ते अपने को अयोग्य मानना दोष है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जनक-विचार

जनक अपने मन को समझाते हैं-

'ऐ मन ! तू शान्त हो जा। ऐ चित्त ! तेरा चलना ही संसार का होना है। संसाररूपी चक्र को रोकने के लिए नाभिरूपी चित्त को रोकना आवश्यक है। हे मेरे चित्त ! तू शान्त हो जा। राज्य तेरा नहीं। पुत्र-परिवार तेरा नहीं। यह शरीर भी तेरा नहीं। जिसका सब कुछ है वह परमात्मा तेरा है। ऐ मेरे चित्त ! तू उसी परमात्मा में शान्त हो जा। तेरा भला होगा।'

जनक अपने मन को बार-बार समझाते हैं। ज्यों-ज्यों मानसिक चिन्तन करते हुए चित्त को समझाते हैं त्यों-त्यों जनक का चित्त परमात्मा के निकट, उस अन्तर्यामी आत्मदेव के निकट विश्रान्ति पाता है। जनक के कर्म कटते हैं। जनक सचमुच जीवन के फल को पाते हैं।

वशिष्ठजी कहते हैं- 'हे रामजी ! फिर उस महीपति ने अपने मन से कहाः

'ऐ मेरे मन ! आज तक मैं तेरे कहने में रहा और जन्म-जन्मान्तर से भटकता रहा। ऐ मेरे चित्त ! तूने जो कहा वह मैंने स्वीकार किया। तूने जो वासना की वह मैंने पूर्ण की। लेकिन तू भी अज्ञान की आग में, वासना की भट्ठी में जलता आया है और मुझे भी तू जलाता आया है। ऐ मेरे मन ! अब तू शान्त पद का आश्रय ले। जैसे ज्ञानवान संत पुरूष आत्म-विचार करते शान्त पद का आश्रय लेकर संसार-समुद्र से तर जाते हैं, तू भी उस आत्मपद का आश्रय ले। तू भी जगत के चिन्तन में उदास होकर निश्चिंत स्वरूप आत्मा में डूब जा। ऐ मेरे मन ! आज तक तेरा कहना मानकर मैं भटक रहा था। अब तू एक बार मेरा कहना मानकर तो देख ! शास्त्र के वचन का कहना मानकर तो देख ! ऐसा दुःख नर्क में भी नहीं जैसा चंचल चित्त में होता है। ऐसा सुख स्वर्ग और वैकुण्ठ में भी नहीं जैसा सुख निश्चल चित्त में प्रकट होता है। ऐ चित्त ! तेरा चंचल होना तेरा और मेरा विनाश है। तेरा स्थिर होना बेड़ा पार होने का हेतु है। ऐ मेरे चित्त ! तू मान जा इसी में तेरा कल्याण है।'

उस महीपति ने अपने चित्त को बार-बार समझाया। कुछ क्षणों के लिए तो चित्त परमात्म-शान्ति में डूबा सा दिखा। फिर आँखें खोलकर बाहर सृष्टि को निहारने लगा। महाराज जनक ने फिर आँखों को लक्ष्य करके समझाया।

'हे चंचल नेत्र ! तुम बाहर का जगत अपने भीतर भरते हो। श्रोत्र और नेत्र ! तुम इस जीव को बड़े धोखे के जगत में ले जाते हो। तुम दोनों के द्वारा जगत भीतर आता है। ज्यों ही जगत भीतर आता है त्यों ही चित्त की चंचलता बढ़ती है।' रात्रि को सो जाते हैं तो आँख और कान के द्वारा जगत भीतर नहीं आता। चित्त प्रकृति में लीन हो जाता है। सुबह बड़ी शान्ति और

ताजगी का अनुभव होता है। प्रकृति में लीन हुआ चित्त शरीर को जरा सी ताजगी देता है। वही चित्त यदि ध्यान करके आत्मा में लीन हो जाय तो जीवन पूरा ताजा बना देता है। तुम तो पूरे पावन हो ही जाते हो, तुम्हारे संग में आने वाले व्यक्ति भी निष्पाप होकर पावन हो जाते हैं।

'ऐ मेरे चित्त ! तेरा सच्चा राज्य तो आत्मा का राज्य है। इस जनकपुरी में तो कई राजा आये। जिसने राज्य किया वह जनक कहलाया। तू कब तक इस जूठी पृथ्वी का गर्व करके अपने को राजा मानेगा ? तू इस पृथ्वी का पति नहीं, महिपति नहीं, तू तो इस पृथ्वी का एक ग्रास मात्र है। तेरे जैसे तो कई राजा आ-आकर इस पृथ्वी में दफनाये गये। उनकी हड्डियाँ भी गल गईं।'

माटी कहे कुम्हार से तू क्या रौंदे मोय।
एक दिन ऐसा आयगा मैं रौंदूगी तोय।।

महिपति अपने चित्त को समझाता हैः 'ऐ चित्त ! तू परमात्मा की शान्ति में शान्त हो जा। नहीं तो ऋषि लोग मेरी हाँसी करेंगे। कहेंगेः समझदार होकर मूर्खों की नाईं आयुष्य बिता दिया। बुद्धिमान होकर पशुओं की नाईं शरीर को पालने-पोषने में जीवन गँवा दिया। ऐ मेरे मन ! जिस परमात्मा ने तुझे अनुराग का दान दिया है उससे संसार के विषय तू क्या माँगता है ? उससे नश्वर चीजों की चाह तू क्यों करता है ?'

जिसने अनुराग का दान दिया,
उससे कम माँग लजाता नहीं ?
अपनापन भूल समाधि लगा,
यह पिय का वियोग सुहाता नहीं।
नभ देख पयोधर शाम ढले,
क्यों मिट उसमें मिल जाता नहीं ?
चुगता है चकोर अंगार,
फरियाद किसी को सुनाता नहीं।
अब सीख ले मौन का मंत्र नया,
अब पिय का वियोग सुहाता नहीं।

'ऐ चित्त ! तू मौन का मंत्र ले ले। भीतर ही भीतर उस पार की शान्ति का अनुभव कर। फिर पता चलेग कि कितना खजाना तेरे भीतर छुपा है।'

सुंञा सखणा कोई नहीं सबके भीतर लाल।
मूरख ग्रंथि खोले नहीं करमी भयो कंगाल।।

कर्मी कर्मकाण्ड में फँसा है, मूर्ख बेवकूफी में फँसा है। कोई-कोई माई का लाल कर्मों से और बेवकूफी से बचकर निष्कर्म तत्त्व में गोता मारता है, निष्क्रिय चैतन्य में अपने आपको खो देता है। उपनिषद कहते हैं-

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।

जहाँ वाणी नहीं पहुँचती, मन से जो प्राप्त नहीं होता, बुद्धि जहाँ से लौटकर आती है ऐसे आत्मदेव को जो भाग्यवान पाता है वह फिर किसी से भयभीत नहीं होता। मृत्यु भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकती, मृत्यु शरीर की होती है। आत्मज्ञानी उस मृत्यु को भी देखता है।

'ऐ चित्त ! तू ब्रह्मज्ञान पा ले। तेरी चंचलता मिटते ही परब्रह्म परमात्मा का अनुभव होने लगेगा। आज तक मैं तेरा कहना मानता आया हूँ। आज तू मेरा कहना मान। तू शान्त हो जा।'

वशिष्ठजी कहते हैं- "हे रामजी ! इस प्रकार महिपति जनक बार-बार अपने चित्त को अन्तर्मुख बना रहे हैं। चित्त को अन्तर्मुख करते-करते ब्रह्मस्थिति का, परमात्म-शान्ति का अनुभव किया।

नेत्र खोले। बाहर निहारा जगत की ओर। इतने में दासियाँ हाथ जोड़कर खड़ी हो गईं कि, "महाराज ! स्नान करने का समय हुआ है। रत्नजड़ित सुवर्ण के कलशों में भरा विविध तीर्थों का जल और वैदिक मन्त्रोच्चार करते ब्राह्मण इंतजार कर रहे हैं।'

जनक ने कहाः 'अब मैंने आत्मजल में नहा लिया है। शरीर को तीर्थ के जल में नहला देता हूँ। अब मैं बाह्य चेष्टा करूँ तो यह शरीर की चेष्टा है, मेरी नहीं। नहाना-धोना, खाना-पीना, राजकाज करना, ये सब कर्म शरीर के हैं। मेरा कोई कर्म नहीं। मेरा तो कर्त्तव्य है उस प्रभु में मस्त रहना। मैंने करने योग्य सब कर्म कर लिये। पालने योग्य धर्म पाल लिये। अपने घर में घर पा लिया।'

इस प्रकार भूपति को परमात्म-शान्ति का अनुभव हुआ।

हे राम जी ! यथायोग्य व्यवहार करो लेकिन चित्त से सदा आत्मपद में स्थिति करो। चित्त में एक बार आत्म-शान्ति का स्वाद आ जाये तो फिर संसार में कोई सुख तुम्हें प्रभावित नहीं करेगा।"

जैसे अमृत तैसे विष घाटी।
जैसा मान तैसा अपमाना।।
हर्ष शोक जाँके नहीं वैरी मीत समान।
कह नानक सुन रे मना मुक्त ताँहि ते जान।।

एक बार चित्त परमात्म-शान्ति का अनुभव करे फिर तुम्हारे चित्त में, तुम्हारे अन्तःकरण में संसार की सत्यता नष्ट हो जायगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

मामेकं शरणं व्रज

जीव मात्र का हित केवल इसी बात में है कि वह किसी और का सहारा न लेकर केवल भगवान की ही शरण ले ले। भगवान के शरण होने के सिवाय जीव का कहीं भी, किंचित मात्र भी नहीं है। कारण यह है कि जीव साक्षात् परमात्मा का अंश है। इससे वह परमात्मा को छोड़कर और किसी का सहारा लेगा तो वह सहारा टिकेगा नहीं। जब संसार की कोई भी वस्तु, व्यक्ति, घटना, परिस्थिति, अवस्था आदि स्थिर नहीं है तो फिर इनका सहारा कैसे स्थिर रह सकता है ? इनका सहारा तो रहेगा नहीं, केवल चिन्ता, शोक, दुःख आदि रह जायेंगे।

अग्नि से अंगार दूर हो जाता है तो वह काला कोयला बन जाता है। पर वही कोयला जब पुनः अग्नि से मिल जाता है तो वह अग्निरूप बन जाता है और अंगार होकर चमक उठता है।

ऐसे ही यह जीव भगवान से विमुख हो जाता है तो वह बार-बार जन्मता-मरता और दुःख पाता रहता है। पर जब वह भगवान के सम्मुख हो जाता है, अनन्य भाव से भगवान की शरण में हो जाता है तो वह भगवत्स्वरूप बन जाता है और चमक उठता है। इतना ही नहीं, विश्व का भी कल्याण करने वाला हो जाता है।

साधक को सबसे पहले 'मैं भगवान का हूँ' इस प्रकार अपने अहंता को बदल देना चाहिए। कारण कि बिना अहंता के बदले साधन सुगमता से नहीं होता और अहंता के बदलने पर साधन सुगमता से, स्वाभाविक ही होने लगता है।

विवाह हो जाने पर कन्या अपनी अहंता को बदल देती है कि 'मैं तो ससुराल की ही हूँ' और पिता के कुल का सम्बन्ध बिल्कुल छूट जाता है। ऐसे ही साधक को अपनी अहंता बदल देनी चाहिए कि 'मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं, मैं संसार का नहीं हूँ और संसार मेरा नहीं है।' अहंता के बदलने पर ममता भी अपने आप बदल जाती है।

'मैं प्रभु के चरणों में ही पड़ा हुआ हूँ' - ऐसा मन में भाव रखते हुए जो कुछ अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति सामने आ जाय उसमें भगवान का मंगलमय विधान मानकर परम प्रसन्न रहें।

भगवान के द्वारा मेरे लिये जो कुछ भी विधान होगा वह मंगलमय हो होगा। पूरी परिस्थिति मेरी समझ में आये या न आये यह बात दूसरी है, पर भगवान का विधान तो मेरे लिए कल्याणकारी ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इसलिए जो कुछ होता है वह मेरे कर्मों का फल नहीं है, प्रत्युत भगवान के द्वारा कृपा करके केवल मेरे हित के लिए भेजा हुआ विधान है।

'भगवान प्राणीमात्र के परम सुहृद होने से अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति भेजकर प्राणियों के पुण्य-पापों का नाश करके, उन्हें परम शुद्ध बनाकर अपने चरणों में खींच रहे हैं' - इस प्रकार दृढ़ता से भाव होना ही भगवान के चरणों में शरण लेना है।

स्वयं भगवान के शरणागत हो जाना यह सम्पूर्ण साधनों का सार है। इसमें शरणागत भक्त को अपने लिए कुछ भी करना शेष नहीं रहता। जैसे पतिव्रता स्त्री का अपना कोई काम नहीं रहता। वह अपने शरीर की सार-सँभाल भी पति के नाते, पति के लिए ही करती है। वह घर कुटुम्ब, वस्तु, पुत्र-पुत्री और अपने कहलानेवाले शरीर को भी अपना नहीं मानती, प्रत्युत पतिदेव का ही मानती है। जिस प्रकार पतिव्रता पति के परायण होकर पति के गोत्र में ही अपना गोत्र मिला देती है और पति के ही घर पर रहती है, उसी प्रकार शरणागत भक्त भी शरीर को लेकर माने जाने वाले गोत्र, जाति, नाम आदि को भगवान को चरणों में समर्पित करके निश्चिंत, निर्भय, निःशोक और निःशंक हो जाता है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

'सम्पूर्ण धर्मों का आश्रय, धर्म के निर्णय का विचार छोड़कर केवल एक मेरी ही शरण में आ जा।'

यहाँ प्रश्न होता है कि धर्म अर्थात् कर्त्तव्य धर्म का स्वरूप से त्याग माना जाय ? नहीं। धर्म का स्वरूप से त्याग करना न तो गीता के अनुसार ठीक है और न वह प्रसंग के अनुसार ही ठीक है। भगवान की बात सुनकर अर्जुन ने कर्त्तव्य धर्म का त्याग नहीं किया है अपितु **करिष्ये वचनं तव** कहकर भगवान की आज्ञा के अनुसार कर्तव्य कर्म का पालन करना स्वीकार किया है।

मामेकं शरणं व्रज का तात्पर्य मन-बुद्धि के द्वारा शरणागति को स्वीकार करना नहीं है, अपितु स्वयं को भगवान की शरण में जाना है। क्योंकि स्वयं की शरण होने पर मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर आदि भी उसी में आ जाते हैं, अलग नहीं रहते।

भगवान के शरण होने के बाद भी तुम्हारे भावों, वृत्तियों, आचरणों आदि में फर्क नहीं पड़ा, सुधार नहीं हुआ, भगवत्प्रेम, भगवद्दर्शन आदि नहीं हुए और अपने में अयोग्यता, अनधिकारता, निर्बलता आदि मालूम होती है तो भी उनको लेकर तुम चिन्ता या भय मत करो। क्योंकि भगवान कहते हैं कि जब तुम मेरी अनन्य शरण हो गये तो वह कमी तुम्हारी कमी कैसे रही ? उसका सुधार करना तुम्हारा काम कैसे रहा ? वह कमी मेरी कमी है। उसका सुधार करना मेरा काम रहा। तुम्हारा तो बस एक ही काम हैः निश्चिंत, निःशोक, निर्भय और निःशंक होकर रहना है। अगर तेरे में चिन्ता, भय, वहम आदि दोष आ जायेंगे तो वे शरणागति में बाधक हो जायेंगे और सब भार तेरे पर आ जायगा। शरण होकर अपने पर भार लेना शरणागति में कलंक है।

विभीषण भगवान श्रीराम के चरणों की शरण हो जाता है तो फिर विभीषण के दोषों को भगवान अपने ही दोष मानते हैं। एक समय विभीषण जी समुद्र के इस पार आये। वहाँ विप्रघोष नामक गाँव में उनसे एक अज्ञात ब्रह्महत्या हो गई। इस पर वहाँ के ब्राह्मणों ने इकट्ठे होकर विभीषण को खूब मारा-पीटा, पर वे मरे नहीं। फिर ब्राह्मणों ने उन्हें जंजीरों से बाँधकर जमीन के भीतर एक गुफा में ले जाकर बन्द कर दिया। राम जी को यह पता लगा तो वे पुष्पक विमान के

द्वारा तत्काल, वहाँ पहुँचे। ब्राह्मणों ने राम जी का बहुत आदर-सत्कार किया और कहा कि, "महाराज ! इसने ब्रह्महत्या कर दी है। इसको हमने बहुत मारा, पर यह मरा नहीं।"

भगवान राम ने कहाः "हे ब्राह्मणों ! विभीषण को मैंने कल्प तक की आयु और राज्य दे रखा है, वह कैसे मारा जा सकता है ! और उसको मारने की जरूरत ही क्या है ? वह तो मेरा भक्त है। भक्त के लिए मैं स्वयं मरने को तैयार हूँ। हमारे यहाँ विधान है कि दास के अपराध की जिम्मेवारी उसके स्वामी पर होती है। स्वामी ही उसके दण्ड का पात्र होता है। इसलिए विभीषण के बदले में आप लोग मेरे को ही दण्ड दें।"

भगवान की यह शरणागत-वत्सलता देखकर सब ब्राह्मण आश्चर्य करने लगे और उन सब ने भगवान की शरण ले ली।

'मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे हैं' - इस अपने पन के समान योग्यता, पात्रता अधिकारता आदि कुछ भी नहीं है। यह सम्पूर्ण साधनों का सार है। छोटा-सा बच्चा भी अपनेपन के बल पर ही आधी रात में सारे घर को नचाता है। जब वह रात में रोने की ठान लेता है तो सारे घरवाले उठ जाते हैं और उसे रिझाते हैं।

इसलिए शरणागत भक्त को अपनी योग्यता आदि की तरफ न देखकर भगवान के साथ अपने 'अपनेपन' की तरफ ही देखते रहना चाहिए।

इसी श्लोक में भगवान कहते हैं किः **मा शुचः।** तू शोक मत कर मेरी शरण होकर भी पूरा विश्वास, भरोसा न रखना और चिन्ता करना यह मेरे प्रति अपराध है। अपने दोषों को लेकर चिन्ता करना वास्तव में अपने बल का अभिमान है। क्योंकि दोषों को मिटाने में अपनी सामर्थ्य मालूम देने से ही उनको मिटाने की चिन्ता होती है। हाँ, अगर दोषों को मिटाने में चिन्ता न होकर दुःख होता है तो दुःख होना इतना दोष नहीं है। जैसे छोटे बालक के पास कुत्ता आता है तो वह कुत्ते को देखकर रोता है, चिन्ता नहीं करता। ऐसे ही दोषों का न सुहाना दोष नहीं है लेकिन चिन्ता करना दोष है।

शरणागत होने के बाद भक्त को लोक परलोक, सदगति-दुर्गति आदि किसी भी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

'भगवान के सम्बन्ध की दृढ़ता होने पर जब संसार शरीर का आश्रय सर्वथा नहीं रहता तब जीने की आशा, मरने का भय, करने का राग और पाने की लालच' - ये चारों ही नहीं रहते। क्योंकि अपने परिच्छिन्न 'मैं' को उस अखण्ड व्यापक में अर्पित कर दिया। जब तक परिच्छिन्न अहं बना रहता है तब तक चिन्ता और भय बना रहेगा। उस व्यापक सच्चिदानंद परमात्मा में, परिपूर्ण ब्रह्म में अपने मैं को समर्पित कर देना त्रिगुणातीत होना है। भगवान की शरण का मतलब यह नहीं कि किसी प्रतिमा के चरणों में सिर टेकते रहना, अपितु ब्रह्मवेत्ता गुरूओं से भगवत्तत्त्व का ज्ञान पाकर अपने परिच्छिन्न 'मैं' को व्यापक सच्चिदानंद परमात्मा में लीन

करना। जैसे घटाकाश अपने को महाकाशस्वरूप समझ ले, ऐसे ही जीव अपने वास्तविक शिवस्वरूप को समझ ले।

भगवान की मूर्ति की शरण तो क्या, भगवान के साकार सान्निध्य में अर्जुन था लेकिन जब ज्ञा उपदेश से अर्जुन का मोह नष्ट हुआ और अपने स्वरूप की स्मृति आयी तभी वह धन्य हुआ।

'भगवान ! मैं तेरी शरण हूँ.... मैं तेरी शरण हूँ....' यह भाव तो ठीक है लेकिन अपने देह की खण्डता, परिच्छिन्नता और नश्वरता में जो अपना अहंभाव है, 'मैं' पना लगा है उसको वहाँ से हटाकर भगवान की अखण्डता, व्यापकता, अपिच्छिन्नता और नित्यता में लगाना ही भगवान के शरण होना है।

शरणागत भक्त में यह एक बात आती है किः 'अगर मेरा जीवन प्रभु के लायक सुन्दर और शुद्ध नहीं बना तो भक्तों की बात मेरे आचरण में कहाँ आयी ? नहीं आयी, क्योंकि मेरी वृत्तियाँ ठीक नहीं रहती।' वास्तव में मेरी वृत्तियाँ हैं - ऐसा मानना ही दोष है। वृत्तियाँ उतनी दोषी नहीं हैं।

मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर आदि में जो मेरापन है यही गलती है, क्योंकि जब मैं भगवान की शरण हो गया और जब सब कुछ उनको समर्पित कर दिया तो मन, बुद्धि आदि मेरे कहाँ रहे ? अतः शरणागत को मन, बुद्धि आदि की अशुद्धि की चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिए। 'मेरी वृत्तियाँ ठीक नहीं हैं' - ऐसा भाव कभी नहीं लाना चाहिए। किसी कारणवश अचानक ऐसी वृत्तियाँ आ भी जाय तो आर्तभाव से 'हे मेरे नाथ ! हे मेरे प्रभो ! बचाओ ! बचाओ !! बचाओ!!!' ऐसे प्रभु को पुकारना चाहिए। क्योंकि वे सर्वसमर्थ स्वामी हैं तो चिन्ता क्यों करना ?

आचरणों की कमी होने से भीतर से भय पैदा होता है और साँप, बिच्छू, बाघ आदि से बाहर से भय पैदा होता है। शरणागत भक्त के ये दोनों ही प्रकार के भय मिट जाते हैं। इतना ही नहीं, मृत्यु का भय भी, जो बड़े-बड़े विद्वानों को भी होता है, वह भय भी सर्वथा मिट जाता है।

'मेरी वृत्तियाँ खराब हो जायेंगी - ऐसे भय का भाव भी साधक को भीतर से निकाल देना चाहिए। क्योंकि मैं भगवान की कृपा में तरान्तर हो गया हूँ, अब मुझे किसी बात का भय नहीं है। इन वृत्तियों को अपनी मानने से ही मैं इनको शुद्ध नहीं कर सका, **क्योंकि इनको मेरी मानना ही मलिनता है।**

एक वृत्ति उठी, दूसरी वृत्ति उठने को है उसके बीच की अवस्था भगवान का वास्तविक स्वरूप है, न कि ये वृत्तियाँ।

चेतन विमल सहज सुख राशि।

जीव चेतन है, विमल है, सहज सुख-स्वरूप है। नाहक परेशानी मोल लेता है। जो भगवान की शरण होकर अपने को जीव मानता है उसकी बुद्धि हँसने योग्य है, उसका निर्णय हास्यास्पद है।

'इसलिए अब मैं कभी भी वृत्तियों को अपनी नहीं मानूँगा। जब वृत्तियाँ मेरी हैं ही नहीं तो मुझको भय किस बात का ? अब तो केवल भगवान की कृपा ही कृपा है। वही सर्वत्र परिपूर्ण हो रही है। यह बड़ी खुशी की, प्रसन्नता की बात है।' इस प्रकार साधक को निर्भय और निश्चिंत हो जाना चाहिए।

भय पराये से होता है, आत्मीय से नहीं होता। भय दूसरे से होता है, अपने से नहीं होता। **द्वितीयाद्वै भयं भवति।** प्रकृति का कार्य शरीर, संसार द्वितीय है, इसलिए इनसे सम्बन्ध रखने पर ही भय होता है, क्योंकि इनके साथ सदा सम्बन्ध रह ही नहीं सकता। कारण यह है कि प्रकृति और पुरूष का स्वभाव सर्वथा भिन्न-भिन्न है, एक जड़ है, दूसरा चेतन। एक विकारी है, दूसरा निर्विकारी। एक परिवर्तनशील है, दूसरा अपरिवर्तनशील। एक प्रकाश्य है, दूसरा प्रकाशक। मिथ्या और परिवर्तनशील को सत्य मानने से भय होता है। अपने सत्य स्वरूप को स्वीकार कर लो, भय छूट जायगा। **जीवो ब्रह्मैव नापरः।** जीव ब्रह्म से अलग था नहीं, है नहीं, हो सकता नहीं। सब दुःखों का मूल अज्ञान है। अज्ञान हटा दिया कि जीव ने अपने स्वरूप को पा लिया, ईश्वर के अनन्य शरण हो गया।

भगवान पराये नहीं हैं। वे तो आत्मीय हैं। जीव उनका सनातन अंश है, उनका स्वरूप है। उनकी शरण होने पर मनुष्य सदा के लिए निर्भय हो जाता है। बच्चे को माँ से दूर होने पर तो भय होता है, पर माँ की गोद में चले जाने पर उसका भय मिट जाता है, क्योंकि माँ उसकी अपनी है। भगवान का भक्त इससे भी विलक्षण होता है। बच्चे और माँ में तो भेदभाव दिखता है, पर भक्त और भगवान में भेदभाव सम्भव ही नहीं है।

भगवान भक्त के अपनेपर को ही देखते हैं, गुणों और अवगुणों को नहीं। स्वरूप से भक्त सदा से ही भगवान का है और गुण दोष आगन्तुक हैं। इसलिए भगवान की दृष्टि इस वास्तविकता पर ही सदा जमा रहती है। जैसे कीचड़ आदि से सना हुआ बच्चा जब माँ के सामने आता है तो माँ की दृष्टि केवल अपने बच्चे की तरफ ही जाती है, बच्चे के मैल की तरफ नहीं। बच्चे की दृष्टि भी अपने मैल की तरफ नहीं जाती। माँ साफ करे या न करे, बच्चे की दृष्टि में तो मैला है ही नहीं, उसकी दृष्टि में तो केवल माँ ही है। द्रौपदी के मन में कितना द्वेष और क्रोध भरा हुआ था किः "जब दुःशासन के खून से अपने केश धोऊँगी तभी केशों को बाँधूगी।" परन्तु द्रौपदी जब भी भगवान को पुकारती है, भगवान चट आ जाते हैं, क्योंकि भगवान के साथ द्रौपदी का प्रगाढ़ अपनापन था।

साधक को चाहिए कि वह भगवान की मर्जी से सर्वथा अपनी मर्जी मिला दे। भगवान पर अपना किंचित भी आधिपत्य न माने, अपितु अपने पर पूरा आधिपत्य माने। मैं भगवान का हूँ तो भगवान मेरे लिये जैसा ठीक समझें वैसी ही निःसंकोच होकर करें। कहीं भी भगवान हमारे मन की करें तो उसमें संकोच हो कि मेरे लिए भगवान को ऐसा करना पड़ा। यदि अपने मन की बात पूरी होने से संकोच नहीं होता अपितु संतोष होता है तो यह शरणागति नहीं है। शरणागत

भक्त शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि के प्रतिकूल परिस्थिति में भी भगवान की मर्जी समझकर प्रसन्न रहता है।

भक्तों की रक्षा, दुष्टों का विनाश और धर्म की स्थापना - इन तीन बातों के लिए समय-समय पर भगवान अवतार लेते हैं। इन तीन बातों में केवल भगवान का क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ? कुछ नहीं। वे तो केवल प्राणीमात्र के कल्याण के लिए ही ये तीनों काम करते हैं। इससे भगवान की स्वाभाविक आत्मीयता, कृपालुता, प्रियता, हितैषिता, सुहृदता और निरपेक्ष उदारता ही सिद्ध होती है।

भक्त को अपनी सब चिन्ताएँ भगवान पर ही छोड़ देनी चाहिए। भगवान दर्शन दें या न दें, प्रेम दें या न दें, वृत्तियों को ठीक करें या न करें, हमें शुद्ध बनायें या न बनायें - यह सब भगवान की मर्जी पर छोड़ देना चाहिए। उसे तो बिल्ली का बच्चा बनना चाहिए। बिल्ली का बच्चा अपनी माँ पर निर्भर रहता है। बिल्ली चाहे जहाँ रखे, चाहे जहाँ ले जाय। बिल्ली अपनी मर्जी से बच्चे को उठाकर ले जाती है तो वह पैर समेट लेता है। ऐसे ही शरणागत भक्त संसार की तरफ से अपने हाथ-पैर समेटकर केवल भगवान का चिन्तन, नाम-जप आदि करते हुए भगवान की तरफ ही देखता रहता है। वह जो कुछ काम करता है उसको भगवान का ही समझकर, भगवान की ही शक्ति मानकर, भगवान के ही लिए करता है, अपने लिए किंचिन्मात्र भी नहीं करता। भगवान का जो विधान है, उसमें परम प्रसन्न रहता है, अपने मन को कुछ भी नहीं लगाता।

जैसे, कुम्हार पहले मिट्टी को सिर पर उठाकर लाता है तो कुम्हार की मर्जी, गीला करके रौंदता है तो कुम्हार की मर्जी, चक्के पर चढ़ाकर घुमाता है तो कुम्हार की मर्जी। मिट्टी कभी कुछ नही कहती कि तुम घड़ा बनाओ, सकोरा बनाओ, मटकी बनाओ। कुम्हार चाहे जो बनाये उसकी मर्जी है।

ऐसे ही शरणागत भक्त अपनी कुछ भी मर्जी, मन की बात नहीं रखता। वह जितना अधिक निश्चिंत और निर्भय होता है, भगवत्कृपा उसको अपने आप उतना ही अधिक अपने अनुकूल बना लेती है और जितनी वह चिन्ता करता है, अपना बल मानता है, उतना ही वह आती हुई भगवत्कृपा में बाधा लगाता है। शरणागत होने पर भगवान की ओर से जो विलक्षण, विचित्र, अखण्ड अटूट कृपा आती है, अपनी चिन्ता करने से उस कृपा में बाधा लग जाती है।

संसार और भगवान इन दोनों की सम्बन्ध तो तरह का होता है। संसार का सम्बन्ध केवल माना हुआ है और भगवान का सम्बन्ध वास्तविक है। संसार का सम्बन्ध तो मनुष्य को पराधीन बनाता है, गुलाम बनाता है, पर भगवान का सम्बन्ध मनुष्य को स्वाधीन बनाता है, चिन्मय बनाता है, भगवान का भी मालिक !

किसी बात को लेकर अपने में कुछ भी अपनी विशेषता दिखती है, वही वास्तव में पराधीनता है। यदि मनुष्य विद्या, संपत्ति, त्याग, वैराग्य आदि किसी बात को लेकर अपनी

विशेषता मानता है तो यह उन विद्या आदि की पराधीनता, दासता ही है। जैसे, कोई धन को लेकर अपने को विशेष मानता है तो यह विशेषता वास्तव में धन की ही हुई, खुद की नहीं। वह अपने को धन का मालिक मानता है, पर वास्तव में वह धन का गुलाम है।

प्रभु का यह कायदा है कि जिस भक्त को अपने में कुछ भी विशेषता नहीं दिखती, अपने में किसी बात का अभिमान नहीं होता, उस भक्त में भगवान की विलक्षणता उतर आती है। किसी-किसी में यहाँ तक विलक्षणता आती है कि उसके शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि प्राकृत पदार्थ भी चिन्मय बन जाते हैं। उनमें जड़ता का अत्यन्त अभाव हो जाता है। ऐसे भगवान के प्रेमी भक्त भगवान में ही समा गये हैं, अन्त में उनके शरीर नहीं मिले। जैसे मीराबाई शरीर सहित भगवान के श्रीविग्रह में लीन हो गईं। केवल पहचान के लिए उनकी साड़ी का छोटा-सा छोर श्रीविग्रह के मुख में रह गया और कुछ नहीं बचा। ऐसे ही संत श्री तुकाराम जी शरीर सहित वैकुण्ठ चले गये।

ज्ञानमार्ग में शरीर चिन्मय नहीं होता, क्योंकि ज्ञानी असत् से सम्बन्ध-विच्छेद करके, असत् से अलग होकर स्वयं चिन्मय तत्त्व में स्थित हो जाता है। परंतु जब भक्त भगवान के सम्मुख होता है तो उसके शरीर, इन्द्रियाँ, मन, प्राण आदि सभी भगवान के सम्मुख हो जाते हैं। तात्पर्य यह हुआ कि जिनकी दृष्टि केवल चिन्मय तत्त्व पर ही है, जिनकी दृष्टि में चिन्मय तत्त्व से भिन्न जड़ता की स्वतन्त्र सत्ता ही नहीं होती तो वह चिन्मयता उनके शरीर आदि में भी उतर आती है और वे शरीर आदि चिन्मय हो जाते हैं। हाँ, लोगों की दृष्टि में तो उनके शरीर में जड़ता दिखती है, पर वास्तव में उनके शरीर चिन्मय होते हैं।

भगवान की सर्वथा शरण हो जाने पर शरणागत के लिए भगवान की कृपा विशेषता से प्रकट होती है, पर मात्र संसार का स्नेहपूर्वक पालन करने वाली और भगवान से अभिन्न रहने वाली वात्सल्यमयी माता लक्ष्मी का प्रभु-शरणागत पर कितना अधिक स्नेह होता है, वे कितना अधिक प्यार करती है, इसका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। लौकिक व्यवहार में भी देखने में आता है कि पतिव्रता स्त्री को पितृभक्त पुत्र बहुत प्यारा लगता है।

प्रेमभाव से परिपूर्ण प्रभु जब अपने भक्त को देखने के लिए पधारते हैं तो माता लक्ष्मी भी प्रभु के साथ आती हैं। परन्तु कोई भगवान को न चाहकर केवल माता लक्ष्मी को ही चाहता है तो उसके स्नेह के कारण माता लक्ष्मी भी आ जाती हैं, पर उनका वाहन दिवान्ध उल्लू होता है। ऐसे वाहनवाली लक्ष्मी को प्राप्त करके मनुष्य भी मदान्ध हो जाता है। अगर उस माँ को कोई भोग्या समझ लेता है तो उसका बड़ा भारी पतन हो जाता है क्योंकि वह तो अपनी माँ को ही कुदृष्टि से देखता है, इसलिए वह महान अधम् है।

जहाँ केवल भगवान का प्रेम होता है वहाँ तो भगवान से अभिन्न रहने वाली लक्ष्मी भगवान के साथ आ ही जाती है। पह जहाँ केवल लक्ष्मी की चाहना है वहाँ लक्ष्मी के साथ भगवान भी आ जायें यह नियम नहीं है।

शरणागति के विषय में एक कथा आती है। सीताजी, राम जी और लक्ष्मणजी जंगल में एक वृक्ष के नीचे बैठे थे। उस वृक्ष की शाखाओं और टहनियों पर एक लता छाई हुई थी। लता के कोमल-कोमल तन्तु फैल रहे थे। उन तन्तुओं में कही पर नयी-नयी कोंपलें निकल रही थीं और कहीं पर ताम्रवर्ण के पत्ते निकल रहे थे। पुष्प और पत्तों से लता छाई हुई थी। उससे वृक्ष की सुन्दर शोभा हो रही थी। वृक्ष बहुत ही सुहावना लग रहा था। उस वृक्ष की शोभा को देखकर भगवान श्रीराम लक्ष्मण जी से बोलेः "देखो लक्ष्मण ! यह लता अपने सुन्दर-सुन्दर फल, सुगन्धित फूल और हरी-हरी पत्तियों से इस वृक्ष की कैसी शोभा बढ़ रही है ! जंगल के अन्य सब वृक्षों से यह वृक्ष कितना सुन्दर दिख रहा है ! इतना ही नहीं, इस वृक्ष के कारण ही सारे जंगल की शोभा हो रही है। इस लता के कारण ही पशु-पक्षी इस वृक्ष का आश्रय लेते हैं। धन्य है यह लता !"

भगवान श्रीराम के मुख से लता की प्रशंसा सुनकर सीताजी लक्ष्मण से बोलीः

"देखो लक्ष्मण भैया ! तुमने ख्याल किया कि नहीं ? देखो, इस लता का ऊपर चढ़ जाना, फूल पत्तों से छा जाना, तन्तुओं का फैल जाना, ये सब वृक्ष के आश्रित हैं, वृक्ष के कारण ही हैं। इस लता की शोभा भी वृक्ष के ही कारण है। अतः मूल में महिमा तो वृक्ष की ही है। आधार तो वृक्ष ही है। वृक्ष के सहारे बिना लता स्वयं क्या कर सकती है ? कैसे छा सकती है ? अब बोलो लक्ष्मण जी ! तुम्हीं बताओ, महिमा वृक्ष की ही हुई न ? वृक्ष का सहारा पाकर ही लता धन्य हुई न ?"

राम जी ने कहाः "क्यों लक्ष्मण ! यह महिमा तो लता की ही हुई न ? लता को पाकर वृक्ष ही धन्य हुआ न ?"

लक्ष्मण जी बोलेः "हमें तो एक तीसरी ही बात सूझती है।"

सीता जी ने पूछाः "वह क्या है देवर जी ?"

लक्ष्मणजी बोलेः "न वृक्ष धन्य है न लता धन्य है। धन्य तो यह लक्ष्मण है जो दोनों की छाया रहता है।"

भगवान और उनकी दिव्य आह्लादिनी शक्ति, दोनों ही एक दूसरे की शोभा बढ़ाते हैं। कोई उन दोनों को श्रेष्ठ बताता है, कोई केवल भगवान को श्रेष्ठ बताता है और कोई केवल उनकी आह्लादिनी शक्ति को श्रेष्ठ बताता है। शरणागत भक्त के लिए तो प्रभु और उनकी आह्लादिनी शक्ति दोनों का ही आश्रय श्रेष्ठ है।

जब मनुष्य भगवान की शरण हो जाता है, उनके चरणों का सहारा ले लेता है तो वह सम्पूर्ण प्राणियों से, विघ्न-बाधाओं से निर्भय हो जाता है। उसको कोई भी भयभीत नहीं कर सकता, कोई भी कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

भगवान के साथ काम, भय, द्वेष, क्रोध, स्नेह आदि से भी सम्बन्ध क्यों न जोड़ा जाय, वह भी जीव का कल्याण करने वाला ही होता है।

केवल एक भगवान की शरण होने का तात्पर्य है - केवल भगवान मेरे हैं, अव वे ऐश्वर्य-सम्पन्न हैं तो बड़ी अच्छी बात है और कुछ भी ऐश्वर्य नहीं है तो बड़ी अच्छी बात। वे बड़े दयालु हैं तो बड़ी अच्छी बात और इतने निष्ठुर, कठोर हैं कि उनके समान दुनियाँ में कोई कठोर ही नहीं, तो भी बड़ी अच्छी बात। उनका बड़ा भारी प्रभाव है तो बड़ी अच्छी बात और उनमें कोई प्रभाव नहीं हो तो भी बड़ी अच्छी बात। शरणागत में इन बातों की कोई परवाह नहीं होती। उसका तो एक ही भाव रहता है कि भगवान जैसे भी हैं, हमारे हैं। भगवान की इन बातों की परवाह न होने से भगवान का ऐश्वर्य, माधुर्य, सौन्दर्य, गुण, प्रभाव आदि चले जायेंगे ऐसी बात नहीं है। पर हम उनकी परवाह नहीं करेंगे तो हमारी असली शरणागति होगी।

भगवान के प्रति भक्तों के अलग-अलग भाव होते है। कोई कहता है कि दशरथ जी की गोद में खेलनेवाले जो रामलाला है, वे ही हमारे इष्ट हैं, राजाधिराज रामचन्द्रजी नहीं, छोटा सा रामलाला। कोई भक्त कहता है कि हमारे इष्ट तो लड्डूगोपाल है, नन्द के लाला हैं। वे भक्त अपने रामलाला को, नन्दलाला को संतों से आशीर्वाद दिलाते हैं। तो भगवान को यह बहुत प्यारा लगता है। तात्पर्य है कि भक्तों की दृष्टि भगवान के ऐश्वर्य की तरफ जाती ही नहीं।

संत कहते हैं कि अगर भगवान से मिलना हो तो साथ में साथी नहीं होना चाहिए और सामान भी नहीं होना चाहिए। साथी और सामान के बिना भगवान से मिलो। जब साथी, सहारा साथ में है तो तुम क्या मिले भगवान से ? और मन, बुद्धि, विद्या, धन आदि सामान साथ में बँधा रहेगा, तो उसका परदा रहेगा। परदे में मिलन थोड़े ही होता है ! साथ में कोई साथी और सामान न हो तो भगवान से जो मिलन होगा, वह बड़ा विलक्षण और दिव्य होगा।

कुछ भी चाहने का भाव न होने से भगवान स्वाभाविक ही प्यारे लगते हैं, मीठे लगते हैं। जिसमें चाह नहीं है, कोई आकांक्षा इच्छा नहीं है वह भगवान का खास घर है। भगवान के साथ सहज स्नेह हो। स्नेह में कुछ मिलावट न हो, कुछ भी चाहना न हो। जहाँ कुछ भी चाहना हो जाय वहाँ प्रेम कैसा ? वहाँ तो आसक्ति, वासना, मोह, ममता ही होते हैं।

भगवान एक बार भक्त को खींच लें तो फिर छोड़ें नहीं। भगवान से पहचान न हो तब तक तो ठीक है। अगर उससे पहचान हो गई तो फिर मामला खत्म। फिर किसी काम के नहीं रहोगे। तीनों लोकों में निकम्मे हो जाओगे।

हाँ, जो किसी काम का नहीं होता, वह सब के लिए सब काम का होता है। परंतु उसको किसी से कोई मतलब नहीं होता।

शरणागत भक्त को भजन नहीं करना पड़ता, उसके द्वारा स्वतः स्वाभाविक भजन होता है। भगवान का नाम उसे स्वाभाविक ही बड़ा मीठा, प्यारा लगता है। जैसे श्वास अपने आप चलता रहता है, श्वास के बिना हम जी नहीं सकते ऐसे ही शरणागत भक्त भजन के बिना नहीं रह सकता।

जिसको सब कुछ अर्पित कर दिया उसके विस्मरण में परम व्याकुलता, महान् छटपटाहट होने लगती है। 'नारदभक्ति सूत्र' में आया हैः **तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।** ऐसे भक्त से अगर कोई कहे कि आधे क्षण के लिए भगवान को भूल जाओ तो तीनों लोकों का राज्य मिलेगा, तो वह इसे ठुकरा देगा। भागवत में आया हैः

'तीनों लोकों के समस्त ऐश्वर्य के लिए भी उन देवदुर्लभ भगवच्चरणकमलों को जो आधे निमेष के लिए भी नहीं त्याग सकते, वे ही श्रेष्ठ भगवदभक्त हैं।'

भगवान कहते हैं- 'स्वयं को मुझे अर्पित करने वाला भक्त मुझे छोड़कर ब्रह्मा का पद, इन्द्र का पद, सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य, पातालादि लोकों का राज्य, योग की समस्त सिद्धियाँ और मोक्ष को भी नहीं चाहता।'

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

क्षण का भी प्रमाद मृत्यु है

हे चैतन्य देव ! तू इस विस्तृत जगत को दीर्घ काल से चला आता मत समझ। तू ऐसा ख्याल मत कर बैठना कि, 'मेरा पूर्व जन्म था और वहाँ किये हुए पाप पुण्यों के फलस्वरूप यह वर्त्तमान जन्म हुआ है और इस वर्त्तमान जन्म में कर्म उपासनादि साधन-संपन्न होकर ज्ञान प्राप्त करूँगा और मोक्ष का भागी बनूँगा। मुझसे पृथक अन्य लोग भी हैं जिनमें से कोई मुक्त हैं कोई बद्ध हैं।'

प्यारे ! अन्तःकरणरूपी गुफा में बैठकर इस प्रकार का विचार मत करना। क्योंकि यह सारा विश्व स्वप्नवत है जैसे क्षण भर से तुझको स्वप्न में विस्तीर्ण संसार दिख जाता है और उस क्षण के ही अन्दर तू अपना जन्मादि मान लेता है वैसे ही यह वर्त्तमान काल का जगत भी तेरा क्षण भर का ही प्रमाद है।

प्रिय आत्मन् ! न तेरा पहले जन्म था न वर्त्तमान में है और न आगे होगा। यदि क्षणमात्र के लिए अपने आसन से हटेगा, अपने आपको स्वरूप में स्थित न मानेगा, प्रमाद करेगा तो वही प्रमाद विस्तीर्ण जगत हो भासेगा। प्यारे ! तू अपने आपको मन, बुद्धि आदि के छोटे से आँगन में मत समझ। जैसे महान् समुद्र में छोटी बड़ी अनेक तरंगे पैदा और नष्ट होती रहती हैं वैसे ही अनंत अनंत मन, बुद्धि आदि तरंग तुझ महासागर में पैदा हो होकर नष्ट होती रहती हैं। मन बुद्धि की कल्पना ही संसार है। नहीं नहीं.... मन-बुद्धि ही संसार है। इनसे भिन्न संसार की सत्ता किंचित मात्र भी नहीं है। मन बुद्धि की भी अपनी अलग सत्ता नहीं है। तेरी ही सत्ता से मन बुद्धि भासते हैं। जैसे मरूभूमि में रेत ही जल होकर भासती है वैसे तू ही जगत होकर भास रहा है। जैसे रेत सदैव रेत ही है फिर भी दूर से जल नजर आता है वैसे ही तू चैतन्य आत्मा सदैव

ज्यों का त्यों एकरस, निर्विकार, अखण्ड आनन्दघन है, परंतु मन-बुद्धि में से जगत होकर भासता है। देख, भाष्यकार स्वामी क्या कहते हैं !

मय्यखण्डसुखाम्योधे बहुधा विश्ववीचयः।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामारूतविभ्रमात्।।

मुझ अखण्ड आनन्द स्वरूप आत्मारूपी सागर में मायारूपी पवन से, भ्रांति के कारण अनेक-अनेक विश्वरूपी तरंगे उत्पन्न हो रही हैं और विलीन हो रही हैं।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ना करो नींद से प्यार..................

राजा भर्तृहरि कहते हैं कि मैंने भोग नहीं भोगे, भोगों ने मुझे भोग लिया। समय ने मुझे काट लिया। बीमारी का इलाज तो हो सकता है परन्तु वृद्धावस्था को आने से कोई भी नहीं रोक सकता। सारा दिन निराकार से ही लेन देन है। सुख भी निराकार है और दुःख भी निराकार है। कच्चे क्षणिक वैराग्य से तो कल्याण नहीं हो सकता। जैसे अधकच्ची चीजें खाने से कष्ट होता है।

आग जलानी है तो फूँकने वाली जला, सेंकने वाली न जला।

जब तक खुदी नहीं आती तब तक खुदा का पता नहीं लगता। स्वामी राम को उसकी आत्मा की लगन खींच रही थी। उन्होंने अनारकली के भरे बाजार में अपने बच्चों के हाथों से उँगलियाँ खींच लीं और आत्मदेव की मस्ती में मस्त हो गये। चले जाने की ताकत आ गई।

काल का ज्ञात और अज्ञात रूप हमें फाड़े निगल रहा है। हम सभी नासमझ बनकर बेरहम दुनिया की वस्तुओं से प्रेम का नाटक खेल रहे हैं।

एक बार एक साहित्यकार साथी से पूछा गयाः

"भाई ! तुम आज इतने परेशान क्यों दिखाई देते हो ?"

"जीवन-संगिनी के निर्वाचन में घरबार छोड़ चुका हूँ क्योंकि वह जीवन और मृत्यु में भी मेरा साथ निभायेगी। संसार की कोई शक्ति मेरे समीप आने से उसे नहीं रोक सकेगी ?"

कुछ दिनों के बाद वे भावुक कलाकार पागलखाने में ही भगवान के प्यारे हो गये। क्योंकि जीवन संगिनी ने अपना घर उनके लिये नहीं छोड़ा। इसीलिए तो बुद्ध ने संपूर्ण सत्य के लिये घर छोड़ा। यशोधरा और राहुल को छोड़ दिया। यह कहते-कहते किः **ओ क्षणभंगुर भव ! राम-राम।** भर्तृहरि ने राज्य सिंहासन छोड़ा इसी सत्य-अन्वेषण के लिए कि प्रेम का अमर संदेश कहाँ है। और वह अन्त में मिला आत्म-साक्षात्कार में।

भला इस संसार के स्वार्थ भरे कण-कण में भी राहत है ? नहीं। कोमलता है ? नहीं। सत्यता है ? नहीं। यह जानते हुए भी मोहपाश में मानव की महाकाया क्यों समाहित है ? क्यों

आबद्ध है ? इसका एक ही कारण है। मनुष्य अपने चिर सनातन विचाररूपी धन को इस संसार में भूल बैठा है। अभाव भी बिना विचार के मृत्यु है और वैभव भी मौत की ही निशानी है।

मानव बिना आत्मबोध के संसार में, संसार के कण-कण में मौत का बुलावा दे रहा है।

विवेक जागने का मार्ग है, गुरू के दर पर झुक जाओ और अन्तर्मुख हो जाओ। संत नुस्खा बताते हैं कि संसार का शहंशाह बनने के लिए उस अनिष्ट को स्वीकार करो। विचार करके अगर परिस्थिति नहीं सँभलती तो अनिष्ट होना ही है।

जो मुस्कुरा सकता है वह अमीर है। जो रोता है वह गरीब है। बाहर कमरा तो वातानुकूल है पर दिल चिन्तातुर है। तुमने तो दिल में अंगीठी सुलगाई हुई है। ऐ परमेश्वर की जात ! तू तो रूहानी नूर है। शुक्र कर कि तू है। तू है तो जवान है और अभी मौत के वारन्ट जारी नहीं हुए। मिट्टी के दीपक में तेल जल रहा है और तेल में बत्ती है। तू फटे पुराने कपड़ों में भी परमेश्वर की ओर भाग सकता है।

जिनकी टाँगें टूटी हुई हैं, हाथ टूटे हुए हैं उन्होंने ही अनिष्ट स्वीकार कर लिया है। चिन्ता परिस्थिति के अधीन नहीं, चिन्ता आदत है।

या कोई दीवाना हँसे, या जिसे तू तौफिक दे।
वरना इस दुनियाँ में रहके, मुस्कुरा सकता है कौन ?

या तो पागल हँसता है या जिसको तू भक्ति की मस्ती दे वह हँसता है। नहीं तो संसार में हँसना बड़ा कठिन है।

तूने तो यूँ ही ख्यालों का बोझा सिर पर उठाया हुआ है। जैसे गाड़ी पर बैठे आदमी ने सिर पर बोझा रक्खा हो। इसलिए अन्तर से शून्य होकर आत्मा का ध्यान, चिन्तन कर, तेरा भला होगा।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

आत्म-निष्ठा

प्रिय साधक ! बहुत प्रयास करने पर भी मन शान्त नहीं होता ? वृत्तियाँ स्थिर नहीं होती ? तुम्हारी साधना निष्फल सी भास रही है ? अहंकार विलीन होने के बदले ठोस होता चला जा रहा है ? कोई उपाय नहीं नजर नहीं आता ?

देख, एक रहस्य समझ ले। यदि तू मन की वृत्तियाँ से डरकर उनको स्थिर करने का उपाय करेगा तो मन ज्यादा पुष्ट होता जायगा, अहंकार खड़ा ही रहेगा। क्योंकि वास्तव में वे तेरी ही सत्ता से जिन्दे हैं। इसलिए तू मन और मन की सत्त्व रज तमोगुणवाली वृत्तियों को मिथ्या

जानकर उनकी तरफ से बेपरवाह हो जा। ऐसा करने पर मन अपने आप शान्त हो जायेगा। क्या तूने बृहस्पति के पुत्र कच का हाल नहीं सुना ?

कच ने बहुत वर्षों तक अहंकार को निवृत्त करने का प्रयत्न किया और अहंकार अधिक पुष्ट होता गया। तब देवगुरू बृहस्पति ने उसे कहाः "पुत्र ! यह अहंकार तुझ आत्मा में मिथ्या स्फुरा है। उसका क्या उपाय करता है ? उसको मिथ्या जान। मिथ्या के लिए परिश्रम मत कर।" ऐसा उपदेश सुनकर कच को ज्ञान हो गया और वह जीवन्मुक्त होकर विचरा।

अतः हे अहंकार के पीछे डंडा लेकर भागने वालों ! डंडे को फेंक दो। क्यों मिथ्या श्रम करते हो ? याद रखोः जिस समय तुम अहं को मिथ्या जान लोगे उसी क्षण वह निवृत्त हो जायगा। रज्जू का सर्प लाठी से नहीं मरेगा, उसके मिथ्यात्व के ज्ञान से ही उसकी तात्कालिक निवृत्ति होती है।

वृत्तियों को सदा के लिए स्थिर करने की मेहनत मत करो। सर्व वृत्तियों का जो प्रकाशक है, अधिष्ठानरूप तुम्हारा आत्मा है उसे जान लो। आत्मनिष्ठ हो रहो और वृत्तियों की परवाह मत करो। वृत्तियाँ अपने आप शान्त होती जायेंगी।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

ध्यान-संकेत

प्रातःकाल में, ब्राह्म मुहूर्त में स्नान-शौचादि से निवृत्त होकर अपने साधना के आसन पर बैठ जाओ। धूप-दीप से, हो सके तो ताजे फूलों से वातावरण को महका दो। पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठकर थोड़े प्राणायाम करो। आन्तर कुम्भक और बहिर्कुम्भक के साथ त्रिबन्ध करो। फिर शान्त होकर बैठ जाओ। आँखें बन्द करो। दृष्टि आज्ञाचक्र में स्थिर करो अथवा ऊपर विशाल गगन की ओर उठाओ। आँखों की पुतलियाँ ऊपर की ओर खींचो। फिर दृढ़ भावना करो किः

मूलाधार चक्र में सुषुप्त पड़ी हुई शक्ति जगकर ऊर्ध्वगामी हो रही है, ऊपर उठ रही है। और ऊपर.... और ऊपर....। नाभि केन्द्र, हृदय और मस्तिष्क की शक्तियाँ ऊपर उठ रही हैं। ऊपर... और ऊपर... और ऊपर... शाबाश..... चित्तवृत्तियाँ ऊपर जा रही हैं, गगन के उस पार पहुँच रही हैं।

जिस प्रकार तेजस्वी पायलट अपने हेलिकाप्टर को ऊपर ले जाता है इसी प्रकार तुम अपनी शक्तियों को ऊपर ले जाओ। दृढ़ भावना करो कि तुम ऊपर उठ रहे हो, तुम्हारा मन ऊपर उठ रहा है, तुम्हारे विचार दिव्य हो रहे हैं। ॐ.....ॐ.....ॐ......

गरदन सीधी रखो। शरीर स्वस्थ और टट्टार दृष्टि और आँखों की पुतलियाँ ऊपर की तरफ। तुम्हारी संपूर्ण शक्तियाँ ऊपर की ओर उठ रही हैं। अनुभव करते चलो कि अपने आत्मा की शक्तियों का विकास हो रहा है। तुम्हारे मन और बुद्धि का विकास हो रहा है। मन मजबूत हो रहा है। ॐ.....ॐ.......ॐ........

संकल्प करते जाओ कि अब तुम हल्के लोगों के संग नहीं करोगे। विषयी लोगों के संपर्क से दूर रहोगे। दिव्य ईश्वरीय मार्ग पर चलने वाले साधक लोगों से ही दोस्ती रखोगे।

तुम ऋषि-मुनियों के वंशज हो। तुम्हारे लिये आत्मा के प्रकाश में ही विचरना शोभनीय है। तुम उस आत्मगगन में गतिमान हो रहे हो। आन्तरिक शक्तियों को खोजने के लिए अदभुत साहस मिल रहा है। ॐ.....ॐ.....ॐ.....

हमारा जीवन पवित्र हो रहा है और सदा के लिए पवित्र रहेगा। भीतर की शक्तियाँ ऊपर उठ रही हैं। हमारा साधनारूपी हवाई जहाज उत्तरोत्तर ऊपर जा रहा है। बैलगाड़ी हजार साल चले फिर भी सागर के पार नहीं जा सकती लेकिन हवाई जहाज उड़े तो पाँच घण्टे में ही देश-विदेश की यात्रा करा दे। इसी प्रकार तुम परमात्मा की ओर यात्रा करने के लिए ऊपर उठ रहे हो।

ऊपर उठो... और ऊपर। तुम किसके शिष्य हो यह पता है न ? हमें दुर्बल जीवन नहीं बिताना है। तुम किन प्राचीन ऋषि-मुनियों के वंशज हो तुम्हें पता है न ?

बल... आत्मबल।

तुम्हारी मानसिक शक्तियों का विकास हो रहा है। तुम्हारी बुद्धि खिल रही है। तुम्हारे ऊपर परमात्मा की कृपा बरस रही है। ॐ.....ॐ.....ॐ......

तुम्हारी शक्तियों का वायुयान ऊँचे उड़ रहा है। तुम्हारे जीवन का हेलिकॉप्टर ऊपर की ओर यात्रा कर रहा है। ॐ....ॐ.....ॐ.....

अब तुम्हारा प्रगाढ़ ध्यान लग रहा है। ॐ.... शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

चित्तविश्रान्ति-प्रयोग

चित्त के उपशम के लिए एक प्रयोग खूब उपयुक्त है।

किसी स्वच्छ एकान्त स्थान में कम्बल या टाट का आसन बिछाकर उस पर लेट जाओ। अब शरीर को खूब खींचो। पैर से सिर तक तमाम अंगों को कसरत मिल जाय, रगरग को व्यायाम मिल जाय इस प्रकार शरीर को तनाव दो। जैसे कुत्ता या बिल्ली अपने शरीर को लम्बा करके खींचते हैं वैसे दो ढाई मिनट तक हाथ पाँव को फैलाकर खूब खींचो। नस-नाड़ियाँ जो काम न करती हों वे भी काम करने लग जायें।

दो ढाई मिनट के बाद शरीर को खींचना छोड़ दो। सब अंगों को ढीले छोड़ दो। एकदम शान्त पड़े रहो। जिह्वा को मुख से बाहर निकालकर दाँतों से हल्की सी दबाओ। होठों को बन्द रखो। दोनों हाथों की पहली उंगली अँगूठे से दबाओ। इस प्रकार ज्ञानमुद्रा में और विश्रान्ति मुद्रा शवासन का प्रयोग करो। ज्ञानमुद्रा से ज्ञानतंतुओं को पुष्टि मिलती है। थोड़ी देर के बाद अगर ज्ञानमुद्रा में और जिह्वा को बाहर रखने में परिश्रम जैसा महसूस हो तो दोनों को छोड़ दो। बिल्कुल स्वाभाविक आरामदायक स्थिति लगे इस प्रकार हाथों को घुटनों की ओर फैला दो। तन और मन को पूर्ण आराम करने दो।

अपने चित्त को किसी भी प्रकार के चिन्तन की बेड़ियाँ न पहनाओ। चित्त को निश्चिंत कर दो। यदि कोई चिन्तन होने लगे तो उस चिन्तन को सावधान होकर निहारते जाओ। श्वासोच्छवास को निहारते जाओ। जैसे भगवान विष्णु क्षीर सागर में योगनिद्रा में विराजमान हैं वैसे तुम भी अपने साधना के आसन पर योगनिद्रा में विश्रान्ति पाते जाओ। भावना करते जाओ कि हम आराम पा रहे हैं अपने अन्तर्यामी राम में।

इस समय आपका कोई कर्त्तव्य नहीं। कोई चिन्ता नहीं। आप पूर्ण आराम पा रहे हो। चित्त को विश्रान्ति के प्रसाद में पावन होने दो।

यह चित्तिश्रान्ति प्रयोग तमाम प्रकार के दोषों को दूर करने में सहाय देगा। इससे अच्छे-अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं और आरोग्य पुष्ट होता है।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

प्रार्थना-निर्झर

परमात्म-चैतन्य में अनन्त अनन्त प्रकार की वृत्तियाँ उठती हैं और अनन्त प्रकार से सत्ता, स्फूर्ति और सामर्थ्य मिलता है फिर भी जो पूर्ण का पूर्ण है उस पूर्ण पुरूषोत्तम का हम ध्यान करते हैं।

संसार की वासना से भटकते जीवों को जन्म-मरण के चक्र से बचाने के लिए जिस परमात्मा ने सत्शास्त्रों और सत्पुरूषों का सान्निध्य दिया उस परम सुहृद परमात्मा का हम ध्यान करते हैं। अबोध बालक को कीर्तन, ध्यान, भक्ति, योग के पवित्र साधन देकर जिस परमात्मा ने अपना साक्षात्कार कराने की व्यवस्था रखी है उस परमात्मा को हम प्यार करते हैं और उसी में हम विश्राम पाते हैं।

जिस प्यारे परमात्मा ने हमें मानवदेह दिया, सदबुद्धि दो, श्रद्धा दी, सत्संग में जाने की प्रेरणा दी उस परम सुहृद परमात्मा को हम प्यार करते हैं। उस प्रभु की कृपा से हमारी पाशवी वृत्तियाँ बदलकर आत्माभिमुख हो रही हैं। स्नेह के सागर उस परमात्मा को प्रार्थना करते हैं कि हे

प्रभु ! हमारी वृत्तियाँ उत्तरोत्तर आपके अभिमुख होती रहें और एक दिन ऐसा आ जाय कि उन सब वृत्तियों से पार होकर वृत्तियों के आधारस्वरूप आप परमात्मा में हमारा अहं विलय हो जाय। आपकी परम चेतना में, परम शांति में, परम प्यार में, परम सामर्थ्य में, आपके परम सुन्दर स्वरूप में हमारे मन की वृत्तियाँ शान्त हो जायें। हमारे चित्त की चेतना जिस सत्ता से आती है उस परम सत्ता में हम जल्दी से जल्दी विश्रान्ति पायें।

हम प्रतिदिन मौत की तरफ सरक रहे हैं। हे जीवनदाता प्रभु ! हे अमर आत्मदेव ! हे परमात्म देव ! हे गुरूदेव ! हम मौत के पहले अमरता का, अपने असली स्वरूप का साक्षात्कार कर लें। अपने आपको जान लें। अन्यथा जगत का सब जाना हुआ अनजाना हो जायगा, जगत का पाया हुआ सब पराया हो जायगा। ऐसी घड़ियाँ आयेगी कि हम अपने घर में ही पराये हो जायेंगे। अपने परिवार ही पराये हो जायेंगे।, अपने रिश्ते-नातों में ही पराये हो जायेंगे। लोग हमें श्मशान में ले जायेंगे। चिता की भभकती आग इस शरीर को जलायेगी। शरीर को अग्नि जलाये उसके पहले हे प्रभु ! तुम्हारी ज्ञानाग्नि से हमारी ममताएँ और आसक्तियाँ जल जायें। हे गुरूदेव ! आपके उपदेश के प्रभाव से हमारा अहं बाधित हो जाय। लोग हमें श्मशान में छोड़ जायें उसके पहले हम तुम तक पहुँच जायें। हे प्रभु ! तुम दया करना। अपने घर में हम पराये हो जायें उससे पहले हम तेरे घर पहुँच जायें, तेरे द्वार पहुँच जायें। हे देवेश ! हे जगदीश ! **असतो मा सदगमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय।**

हमें असत् आसक्तियों से बचा। हमें असत् वासनाओं से बचा। हमें असत् अहंकार से बचा। असत् सम्बन्धों से हमें बचा। असत् इच्छाओं से बचा। हे मेरे सत्य-स्वरूप, प्रेम-स्वरूप, आनन्द-स्वरूप ईश्वर ! हे अन्तर्यामी ! हे मीरा के कन्हैया ! हे शबरी के राम ! हे नामदेव के विट्ठल ! हे धन्ना के ठाकुरजी ! हे योगियों की आत्मा ! तेरे अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप है। मैं नहीं जानता तुझे किस विधि रिझाऊँ लेकिन तू तो जानता है।

हे दयानिधे प्रभो ! हम असत्य से निकल सकें यह हमारे बस की बात नहीं लेकिन तेरी करूणा पर भरोसा है। तेरी कृपा पर भरोसा है। तू हमें असत्य अहंकार से, असत्य आसक्तियों से बचाकर पार लगा दे हमारी जीवन नैया। असत्य अहंकार से, असत्य आसक्तियों से, असत्य देह की ममता से हमारा जीवन बरबाद हुआ जा रहा है। असत्य पदार्थों में हमारा आयुष्य नष्ट हो रहा है। हमें अन्धकार से बचाकर अपने प्रेम प्रकाश की ओर ले चल, ज्ञान-प्रकाश की ओर ले चल, **अहं ब्रह्मास्मि** के खजाने की ओर ले चल।

हमें कब तक इस भवाटवी में भटकना पड़ेगा ? कब तक संसार के सम्बन्धों में उलझना पड़ेगा ? कब तक संसार की सरकती हुई चीजों के पीछे बरबाद होना पड़ेगा ?

हे परमात्मा ! तू हमें बल दे। तू हमें अपने स्वभाव में समा ले।

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

हो गई रहेमत तेरी......

हे प्यारे सदगुरू परमात्मा ! मुझे अपनी आत्म-मस्ती में थाम लो। मैं संसारियों के अज्ञान में कहीं बदल न जाऊँ। मोह-ममता में कहीं फिसल न जाऊँ।

जेसीं जिय जान रहे जेसीं तन में प्राण रहे।

प्रीत संधी डोरी तो पासे सरधी रहे।।

डप आहे मुखे इहो वञ्जों मतां तो खां मां विछड़ी।

अञां प्रीत संधी डोरी सजण आहे कचड़ी।।

जोरसां जलजा अञां नंढडो ही बालक।।

तब तक जी में जान है, तन में प्राण है तब तक मेरी साधना की डोरी, मेरी प्रीति की डोरी तेरी तरफ सरकती रहे... सरकती रहे....।

इस बात का तू ख्याल रखना।

आ जरा नैनां के सदके मुझको सदगुरू थामले।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

जिसने बीजों को जमीन में बो दिया उसके बीज अनन्त गुने हो गये। लेकिन जिसने बीजों को तिजोरी में बन्द करके रख दिया उसके बीज सड़ गये।

जीवन एक भीतर की बहती धारा है। बीज पुष्प खिलाने के लिये हैं। ऐसे ही आन्तरिक बीज आत्मज्ञान का फूल खिलाने के लिए ही है। इसे सींचते रहना। सावधानी के साथ छोटे सुकोमल पौधों की सुरक्षा करते रहना। कहीं तुम्हारी साधना के पौधे पुष्पों में परिणत हुए बिना उखाड़ न दिये जायें। इसलिए साधना के संस्कारों को सँभालते रहना। आहार की शुद्धि, व्यवहार की शुद्धि, विचार की शुद्धि का ख्याल रखना। प्रतिदिन थोड़ा बहुत अभ्यास करते रहना। तो ये संस्काररूपी बीज पौधों में परिणत होते जायेंगे और पौधे पुष्प देने लगेंगे।

ज्ञान की चिन्गारी को फूँकते रहना। ज्योति जगाते रहना। प्रकाश बढ़ाते रहना। ज्ञानमृत के आचमन को दरिया के रूप में बदलते रहना। सूरज की किरण को सूरज की खबर तक ले जाना। सदगुरूओं के प्रसाद को सत्य की प्राप्ति तक पचाते रहना।

बड़ी कीमती करूणा-कृपा परमात्मा की है। सहज में मिली हुई इस दिव्य चीज का कहीं अनादर न कर बैठना। बिना प्रयास के मिली हुई मूल्यवान चीज का कहीं गल्ती से अपव्यय न कर बैठना। बिना श्रम के पाये हुए हीरों का मूल्य कहीं कंकड़ों से न कर बैठना।

जिसके लिए हम रात-रात भर जगे थे, घर बार छोड़कर गुरूओं के द्वारा पर भागे थे वह चीज आपको सहज में मिल रही है। इसका अनादर मत कर देना। इसकी कीमत कहीं छोटी मत कर देना। गुरूओं के प्रसाद को बढ़ाते रहना, सँभालते रहना। 'हाहा... हीही' में कहीं इस अमृत को बिखेर मत देना।

दुनियाँ के चार पैसों की लालच में इस आध्यात्मिक कोहीनूर को कहीं बेच मत देना। सारा विश्व दाँव पर लग जाय फिर भी यह आध्यात्मिक साधना का हीरा तुम्हारा अनमोल रत्न है। सारी पृथ्वी भी इसका बदला नहीं चुका सकती है।

वह परमात्मा का धन तुम्हारे हृदय में प्रविष्ट होता रहे। इस आत्म-खजाने का तुम ख्याल रखना। इसकी बड़ी सम्हाल रखना। यह ईश्वरीय अमानत तुम्हें दिल की झोली में दी जा रही है। उसे लौटाओ तो अधिक करके लौटाना। यह ऐसा खजाना है कि जितना दिया जा रहा है उससे अनन्त गुना लौटाने पर भी तुम्हारे पास रत्तीभर कम न होगा। ऐसी अनूठी यह अमानत है।

आध्यात्मिक संस्कारों के बीज अदभुत ढंग से फूट निकलते हैं और अदभुत ढंग से विस्तार को पाते हैं।

साकी की प्याली पीकर खुद मयखाना हो गया हूँ।

पिया तो प्याली भर शराब लेकिन हो गया शराबखाना। लिया तो चुल्लू भर लेकिन हो गया सागर।

पीकर शराबे मुर्शिद मैं खुद मेखाना हो गया हूँ।
यो वै ब्रह्मैव जानाति तेषां देवानां बलिं विहति।।

जो उस ब्रह्म परमात्मा को जानता है, देवता लोग भी उसका पूजन करते हैं। शुक्र का आदर-पूजन इन्द्रदेव करते हैं क्योंकि शुक्र ब्रह्मवेत्ता का शिष्य है। ज्ञानी का शिष्य भी इन्द्रदेव द्वारा पूजा जाता है। अगर तुम ज्ञानी बन जाओगे, अपने आत्म-खजाने को पा लोगे तो कितनी गरिमा होगी !

भूलकर भी इस खजाने का मूल्य छोटा न करना। कहीं संसार की नौकरी चाकरी को इतना मूल्य न दे बैठना कि इस अनमोल खजाने को भूल जाओ। संसार के कार्य-व्यवहार को इतना मूल्य न देना कि इस वास्तविक खजाने को सँभालने का समय ही न बचे तुम्हारे पास। ऐसा धोखा तुम मत खाना। मन धोखा देगा क्योंकि तुम मन के स्वामी होने के रास्ते जा रहे हो। मन अपना जाल बिछायेगा, कई चालें चलेगा। मन के बिछाये हुए जाल में चुगने के लिए अन्न नहीं है, मोती नहीं है, विष के कण पड़े हैं।

हो सके तो मौन ही हो जाना नहीं तो इशारे से काम लेना। बोलना पड़े तो दो चार शब्दों से काम पूरा करना। भोजन में एकाध ग्रास कम खा लेना। नींद की एकाध झपकी कम से लोगे तो भी काम चल जायगा। कभी ऐसे दिन भी आ जायेंगे कि तुम पाँव पसार कर सदा के लिए सो जाओगे। दुनियाँ के लोग पुकारेंगे, चिल्लायेंगे तो भी तुम आवाज तक नहीं दोगे। मृत्यु की लम्बी नींद में जाने से पहले तुम योगनिद्रा में सो लेना। सोते-सोते 'मैं राम में आराम पा रहा हूँ' इस भाव में सो लेना।

प्रभात में जब उठो तब थोड़ी देर शान्त होकर बैठे रहना। आत्मध्यान में गोता मारना। बाद में ही बिस्तर का त्याग करना। नींद में से उठकर चार-पाँच मिनट आत्म-चिन्तन करते हुए बिस्तर पर बैठे रहना बहुत हितावह है। ॐ.....ॐ.....ॐ....

अनुक्रम

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

भजन माने क्या ? जिस कर्म से, जिस श्रवण से, जिस चिन्तन से, जिस जप से, जिस सेवा से भगवदाकार वृत्ति बने उसे भजन कहा जाता है।

संसार की आसक्ति मिटाने के लिए भजन की आसक्ति अत्यंत आवश्यक है। सारे ज्ञानों व बलों का जो आधार है वह आत्मबल व आत्मज्ञान पाना ही जीवन का उद्देश्य हो। जीवन का सूर्य ढलने से पहले जीवनदाता में प्रतिष्ठित हो जाओ, अन्यथा पछताना पड़ेगा। असफलता और दुर्बलता के विचार उठते ही उसे भगवन्नाम से और पावन पुस्तकों के अध्ययन से हटा दिया करो।

अय मानव ! ऊठ.... जाग...। अपनी महानता को पहचान। कब तक भवाटवी में भटकेगा ? जो भगवान वैकुण्ठ में, कैलास में और ऋषियों के हृदय में है वही के वही, उतने के उतने तेरे पास भी हैं। ऊठ... जाग....। अपने प्यारे को पहचान। सत्संग करके बुद्धि को बढ़ा और परब्रह्म परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जा।

शाबाश वीर....! शाबाश.... हिम्मत... साहस....

जो कुछ कर, परमात्मा को पाने के लिए कर। यही तुझे परमात्मा में प्रतिष्ठित पुरूषों तक पहुँचा देगा और तू भी परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जायगा।

ॐ पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग प्रवचन से ॐ

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

अनुक्रम